दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2497 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 27 अंक नं० 3

ज्ञानी का चिंतवन

अपने ही गुण परजाय सों प्रवाहरूप,
परिणयो तिहूंकाल अपने आधार सों;
अंतर बाहिर परकाशवान एकरस,
क्षीणता न गहै भिन्न रहै भौ विकार सों।
चेतना के रस सरवंग भरि रह्यो जीव,
जैसे लूणकांकर भर्‌यो है रस क्षार सों;
पूरण स्वरूप अति उज्जल विज्ञानघन,
मोकों होहु प्रगट विशेष निरवार सों॥

—पंडित बनारसीदासजी

चारित्र
ज्ञान
दर्शन

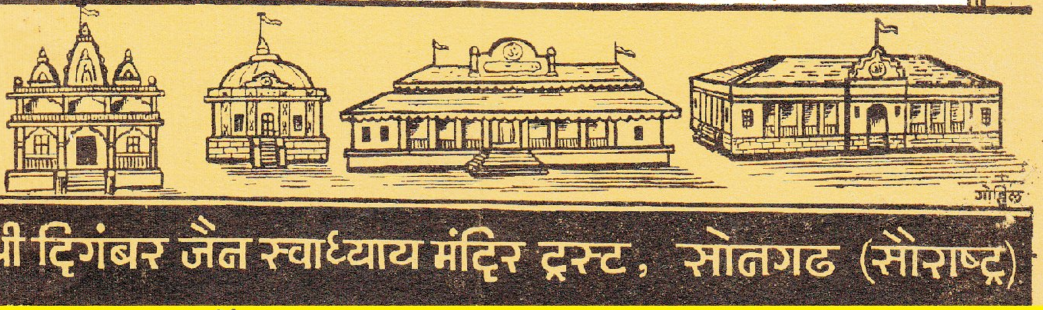

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

जुलाई : 1971] वार्षिक मूल्य 3) रुपये (315) एक अंक 25 पैसा [अषाढ़ : 2497

अध्यात्मरस की वर्षा करके
आपने हमारे जीवन में धर्म का सिंचन किया है

जयपुर में गुरुदेव का उपकार मानते हुए सेठ श्री पूरणचंद्र गोदीका भावभीने चित्त से कहते हैं कि—

हे गुरुदेव ! हमारे नगर में आपने 20 दिन तक विराजमान रहकर टोडरमल स्मारक भवन में प्रवचनों द्वारा अध्यात्म-रस की वर्षा करके, राजस्थान में अध्यात्म का क्रांतिकारी आंदोलन फैला दिया है। बीस दिन तक निरंतर आपके सत्संग से हम तो संसार को भूल ही गये थे और आत्मा की मधुर चैतन्य-छाया में निवास कर रहे थे। उस चैतन्य-छाया के मधुर संस्मरण जीवन में कभी भूले नहीं जा सकेंगे और सदैव शीतलता का सिंचन करके संसार के तीव्र आताप से वे हमारी रक्षा करेंगे।

हे गुरुदेव ! मेरे परिवार पर तथा जयपुर और राजस्थान के मुमुक्षु समाज पर आपने महान उपकार किया है। आत्मा का महिमामय स्वरूप बतलाकर आपने हमें मोक्षमार्ग में प्रेरित किया है और इस विद्वानों की भूमि को पुनः धन्य बना दिया है ! आपके प्रभाव से जयपुर में जैनधर्म का जयजयकार हुआ एवं मुमुक्षुओं के अंतर में धार्मिक जागृति आयी है।

हे गुरुदेव ! बारंबार आपके सत्संग द्वारा आत्मा में आनंद की सरिता बहे और उसका प्रवाह केवलज्ञान-समुद्र में जा मिले—ऐसी प्रार्थना करते हैं।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

जुलाई : 1971 ☆ अषाढ़ : वीर नि० सं० 2497, वर्ष 27 वाँ ☆ अंक : 3

शुद्धपर्याय द्वारा शुद्धद्रव्य का स्वीकार

ज्ञानरूप होकर ही ज्ञानस्वरूप आत्मा का स्वीकार होता है।
निर्मोह परिणति पूर्वक निर्मोह आत्मा का स्वीकार होता है।
दोषरहित परिणति द्वारा निर्दोष स्वभाव का स्वीकार होता है।
नि:शल्य परिणति द्वारा नि:शल्य आत्मा का स्वीकार होता है।

'आत्मा ज्ञायकभाव है'—ऐसा स्वीकार करनेवाली परिणति ज्ञानरूप हुई है।
आत्मा निर्मोह है—ऐसा स्वीकार करनेवाली परिणति निर्मोह हुई है।
आत्मा निर्दोष है—ऐसा स्वीकार करनेवाली परिणति निर्दोष हुई है।
आत्मा नि:शल्य है—ऐसा स्वीकार करनेवाली परिणति नि:शल्य हुई है।

ज्ञान परिणति के बिना ज्ञायकभाव का स्वीकार नहीं हो सकता।
निर्मोह परिणति के बिना निर्मोह स्वभाव का स्वीकार नहीं हो सकता।
निर्दोष परिणति के बिना निर्दोष स्वभाव का स्वीकार नहीं हो सकता।
नि:शल्य परिणति के बिना नि:शल्य स्वभाव का स्वीकार नहीं हो सकता।

—इसप्रकार शुद्ध द्रव्य और शुद्ध पर्याय की अलौकिक संधि है।

आत्मा अपने ज्ञानप्रकाश द्वारा स्व-पर को प्रकाशित करता है

पिछले के दिनों जयपुर में जेष्ठ कृष्णा 6 से प्रारंभ होकर 20 दिन तक धार्मिक शिक्षा का भव्य समारोह चला, उसमें श्री टोडरमल स्मारक भवन में पूज्य श्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचनों का लाभ हजारों श्रोताओं ने लिया। सवेरे श्री प्रवचनसार गाथा पहली और दोपहर को श्री समयसार गाथा छट्ठी पर स्वामीजी ने अपने प्रवचन प्रारंभ किये थे। उन प्रवचनों का कुछ सार भाग यहाँ दिया जा रहा है।

— ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

शिष्य पूछता है कि—प्रभो ! शुद्ध आत्मा का स्वरूप कैसा है ? आनंद का पिपासु शिष्य और कुछ नहीं पूछता परंतु जिसे जानने से आनंद की प्राप्ति हो, ऐसे शुद्ध आत्मा का स्वरूप जानना चाहता है। अपने आत्मा के शुद्धस्वरूप के सिवा अन्य किसी से मुझे प्रयोजन नहीं है।—इसप्रकार आत्मा का अभिलाषी होकर उसका स्वरूप पूछनेवाले शिष्य को आत्मा का शुद्धस्वरूप समझाने के लिये आचार्यदेव यह छठवीं गाथा कहते हैं—

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ दु जो भावो
एवं भणंति सुद्धं णाओ जो सो उ सो चे॥6॥

देखो, यह मांगलिक गाथा है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने इस समयसार में अपूर्व मंगलाचरण किया है। प्रारंभ में शुद्ध आत्मा के प्रतिबिम्ब का, ऐसे सिद्धभगवंतों को आत्मा में ही स्थापित करके नमस्कार किया। पश्चात् निजवैभव से आत्मा का शुद्धस्वरूप बतलाने की प्रतिज्ञा की, परंतु वह किसे बतलाते हैं ?—कि जो शिष्य चार गति के दु:खों से थककर शुद्ध आत्मा का अभिलाषी हुआ है, उसे इस छठवीं गाथा के भाव समझना, सो अपूर्व मंगल है, इसलिये गाथा भी मंगल है।

सीमंधरस्वामी तीर्थंकर वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं; बयाना (राजस्थान) में सवा पाँच सौ वर्ष प्राचीन एक प्रतिमाजी हैं, उनके दर्शन चार वर्ष पूर्व (संवत् 2023 में) किये थे; उन्हें 'विदेहक्षेत्र के धर्मकर्ता जीवंतस्वामी श्री सीमंधरस्वामी' कहा है। ऐसे साक्षात् विद्यमान तीर्थंकर सीमंधर परमात्मा के दर्शन श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने विदेह में जाकर किये थे। देहसहित विदेह में जाकर परमात्मा से भेंट करनेवाले ऐसे महान आचार्यदेव ने इस समयसार की रचना की है।

उसमें छट्ठी गाथा में कहते हैं कि—आत्मा है, वह एक ज्ञायकभाव है; उस ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि से देखने पर आत्मा कभी शुभ-अशुभ विभावोंरूप परिणमित नहीं होता। प्रमत्तपना या अप्रमत्तपना, अथवा संसारीपना या सिद्धपना—ऐसे भेदों के लक्ष से आत्मा का शुद्धस्वरूप पकड़ में नहीं आता; इसलिये कहते हैं कि प्रमत्त या अप्रमत्त आत्मा नहीं है, एक ज्ञायकभाव, वह आत्मा है। ऐसे ज्ञायकभावरूप से जो अपना अनुभव करे, उस आत्मा को 'शुद्ध' कहते हैं। ऐसा शुद्धतत्त्व ही सर्व तत्त्वों में सर्वोपरि श्रेष्ठ साररूप है और वह शुद्धतत्त्व धर्मी के अंतर में ध्येयरूप से जयवंत वर्तता है।—'जयति समयसारः सर्व तत्त्वैक सारः, सुखजलनिधि पूरः क्लेशवाराशि पाराः।' देखो, जयपुर के मंगल में आत्मा के जय की और सुख के पूर की बात आयी। स्वतत्त्वों में उत्तम ऐसा एक शुद्ध आत्मा, उसकी जय है और वह सुखजल का पूर (प्रवाह) है। ज्ञायकभाव कहने से परमस्वभाव दृष्टि में आता है, उदयादि चार भावों के भेद उसमें नहीं आते। अंतर्मुख होकर ऐसे आत्मा की उपासना जिसने की, उसने शुद्ध आत्मा की सेवा की कही जाती है। अनुभव में आये बिना 'यह शुद्ध है' ऐसा कहेगा कौन? अनुभव हुआ, तब खबर पड़ी कि 'मैं ऐसा शुद्ध हूँ।' अतीन्द्रिय आनंद के अनुभव में शुद्ध का नमून आया, तब 'आत्मा ऐसा शुद्ध हूँ' इसप्रकार जाना और उसी को शुद्ध आत्मा कहा। जो शुभ-अशुभ के वेदन में ही खड़ा है, उसे तो शुद्ध आत्मा की खबर नहीं है। शुद्ध आत्मा के अनुभव द्वारा जिसने मोह-विकार को जीत लिया है (नष्ट किया), वह जैन है—

जिन सो ही है आतमा, अन्य होइ सो कर्म;
इसी वचन से समझ ले, जिनप्रवचन का मर्म।

सर्वज्ञ परमात्मा को जो अनंत आनंद प्रगट हुआ, वह कहाँ से प्रगट हुआ है? आत्मा ही

अनंत आनंद की खान है। ऐसे आत्मा को जिसने देखा है—अनुभव किया है—पर से भिन्न उपासना की है, उसी को अधिकार हैं कि—'आत्मा शुद्ध है'—ऐसा कहे। स्वयं अनुभव किये बिना 'शुद्ध है'—यह बात कहाँ से लाया? इसलिये चार गतियों के दु:ख से छूटना हो और आत्मा के आनंद का अनुभव करना हो, उसे परभावों से भिन्न अपने सच्चिदानंद शुद्धात्मा को जानना चाहिये।

आचार्यदेव कहते हैं कि—हम इस शुद्धात्मा का स्वरूप यों ही नहीं कहते, परंतु आत्मानंद का प्रचुरता से अनुभव करनेवाले श्रीगुरुओं ने हमें जो शुद्धात्मा का उपदेश दिया, उसके प्रसाद से और अपने आत्मा के स्वानुभव से हमें जो निजवैभव प्रगट हुआ है, उस निजवैभव के बल से मैं इस समयसार में शुद्धात्मा का स्वरूप कहूँगा... और तुम श्रोताजन भी अपने आत्मा के अनुभव से उसे प्रमाण करना।

कैसा है शुद्ध आत्मा? ज्ञायकभाव है; वह परभावों से और कर्मोपाधि से रहित है; तथापि अज्ञानियों को वह परभावसहित दिखायी देता है; अज्ञानियों का वह प्रतिभास वास्तव में भव का बीज है। राग से भिन्न शुद्धज्ञायकभावरूप अपने को अनुभवना, वह मोक्ष का बीज है।—यह बात 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय' की 14वीं गाथा में अमृतचंद्राचार्यदेव ने की है। उसके मूल इस समयसार में भरे हैं।

समयसार में आत्मा के अद्‌भुत वैभव का वर्णन किया है। उसमें कहते हैं कि आत्मा स्वयं अपने को स्वसंवेदनगम्य हो, ऐसी स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है। स्वयं को प्रकाशित करने के लिये आत्मा को किसी अन्य दीपक की आवश्यकता नहीं होती; वह तो स्वयं प्रकाशमान है, इसलिये अपने ही प्रकाश द्वारा स्वयं अपने को प्रत्यक्ष प्रकाशित करता है—जानता है। मति-श्रुतज्ञान में भी आत्मा का प्रत्यक्ष वेदन करने की शक्ति है।

अहा, ऐसा आत्मतत्त्व! वीतरागी जैनमार्ग में जन्म लेकर ऐसा तत्त्व सुनने का भी प्रेम न आये तो उसे क्या लाभ? भाई, ऐसा मार्ग प्राप्त करके अपने आत्मा की महिमा को लक्ष में तो ले!

❋ ❋ ❋

यह प्रवचनसार है। प्रवचन अर्थात् सर्वज्ञ भगवान की उत्कृष्ट वाणी; उसके साररूप जो सिद्धांत, उसका इसमें वर्णन है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने सर्वज्ञ परमात्मा की वाणीरूप प्रवचन

साक्षात् सुनकर उसका सार इस परमागम में गूँथा है। उसके मंगलाचरण में श्री अमृतचंद्रस्वामी ज्ञानानंदस्वरूप उत्कृष्ट आत्मा को नमस्कार करते हैं। कैसा है वह आत्मा?—कि अपने अनुभव से जो प्रसिद्ध है; उसकी प्रसिद्धि किसी राग द्वारा नहीं होती; वह तो अपने अनुभव से ही प्रसिद्ध होता है; अनंत सिद्ध भगवंत हुए, वे आत्मा का अनुभव कर-करके ही सिद्ध हुए हैं। प्रथम सम्यग्दर्शन में भी आत्मा स्वानुभवप्रत्यक्ष होता है। ऐसे स्वानुभवप्रत्यक्ष चैतन्यस्वरूप परमानंदमय आत्मा को लक्ष में लेकर उसमें उन्मुख होना-ढलना-झुकना, सो अपूर्व मंगल है।

आत्मा का अनेकांतमय ज्ञानतेज जगत के स्वरूप को प्रकाशित करता है और मोहान्धकार को नष्ट करता है। द्रव्य-गुण-पर्यायरूप आत्मा का स्वरूप अपने से सत् है और परभाव उसमें असत् हैं;—इसप्रकार अस्ति-नास्तिरूप अनेकांत द्वारा आत्मा का स्वरूप प्रकाशित होता है। ऐसा अनेकांतयम तेज जयवंत है। अहो! सर्वज्ञ परमात्मा ने अनेकांत द्वारा जो प्रकाशित किया है, उस आत्मस्वरूप को लक्ष में लेने से मिथ्यात्वादि मोह का लीलामात्र में नाश हो जाता है।

जो भव्य जीव परम आनंद के पिपासु हैं, उनके लिये यह शास्त्र रचा जाता है। अतीन्द्रिय ज्ञान और आनंदस्वरूप आत्मा की बात सुनकर जिनके हृदय में आत्मा की ध्वनि गूँजने लगती है—ऐसे परम आनंद के पिपासु भव्य जीवों के लिये इस शास्त्र में हम ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा बतलायेंगे। अहो, इस चैतन्य के अतीन्द्रिय आनंद की वीणा सुनकर जिज्ञासु का आत्मा डोल उठत है।

अब पहली पाँच गाथाओं का प्रारंभ होता है। उससे पूर्व भूमिका में अमृतचंद्रस्वामी शास्त्रकार मुनिराज की अंतरंगदशा का वर्णन करते हैं। शास्त्रकार तो मुनिराज हैं और टीकाकार भी मुनिराज हैं; एक हजार वर्ष पूर्व हुए एक मुनिराज की दशा, हजार वर्ष बाद भी दूसरे मुनि जान लेते हैं।—ऐसी स्वसंवेदन ज्ञान की शक्ति है। अपने आत्मा को प्रत्यक्ष करनेवाले धर्मात्मा, अन्य धर्मात्मा की दशा को भी अनुमान आदि से जान लेते हैं। जिसे अपना आत्मा प्रत्यक्ष नहीं हुआ, स्वयं अपने को ही नहीं जाना, वह दूसरे आत्मा की सच्ची पहिचान नहीं कर सकता, क्योंकि प्रत्यक्षरहित अकेले अनुमान से या इन्द्रियज्ञान से आत्मा ज्ञात नहीं होता।

प्रश्न—मति-श्रुतज्ञान भी आत्मा को प्रत्यक्ष कर सकते हैं?

उत्तर—हाँ; स्वसंवेदन द्वारा मति-श्रुतज्ञान भी आत्मा को स्वानुभवप्रत्यक्ष कर लेते हैं और तभी सम्यग्दर्शन तथा धर्म का प्रारंभ होता है। अतीन्द्रिय आनंद के वेदनसहित ऐसा स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष चौथे गुणस्थान में होता है।

यहाँ अमृतचंद्र मुनिराज अपने से एक हजार वर्ष पूर्व हुए कुन्दकुन्दाचार्यदेव की दशा को पहिचानकर उसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि अहा, इन शास्त्रकार आचार्य-भगवान को संसार-समुद्र का किनारा एकदम निकट आ गया है और सिद्धद्वीप में पहुँचने की तैयारी है। जब अमृतचंद्राचार्य इस टीका की रचना करते हैं, तब तो कुन्दकुन्दस्वामी का जीव स्वर्ग में चौथे गुणस्थान में विराजमान है, परंतु हजार वर्ष पूर्व जब प्रवचनसार शास्त्र की रचना की, तब उनकी कैसी दशा थी! वह उन्होंने अनुमान द्वारा जान ली है। अहो! आत्मा के ज्ञान की अपार शक्ति है, वह अपने को प्रत्यक्ष करके दूसरे को भी निःशंक जान सकता है। मात्र बाह्य दिगम्बर दशा, वह कहीं मुनिपना नहीं है, मुनि के अंतर की दशा कैसी अलौकिक होती है, वह जानी जा सकती है... और ऐसी पहिचान करके यहाँ अमृतचंद्राचार्य उसका वर्णन करते हैं। देखो तो सही, उनको कितना बहुमान है! स्वयं भी मुनि हैं, वे दूसरे मुनिराज की पहिचानपूर्वक कहते हैं कि—अहो! कुन्दकुन्दस्वामी परमदेव तो संसार के किनारे पहुँच चुके हैं और मोक्ष द्वीप में पहुँचने की तैयारी है; उनकी सातिशय विवेकज्योति प्रगट हुई है। अनेकांतरूप वीतरागी विद्या में वे पारंगत हैं; समस्त पक्ष का परिग्रह छोड़कर वे मध्यस्थ हैं; स्वयं पंचपरमेष्ठी की पंक्ति में बैठकर मोक्षलक्ष्मी को ही उपादेय किया है; इसप्रकार स्वयं मोक्षमार्गरूप में परिणमित हुए हैं; वे साक्षात् शुद्धोपयोगरूप होने की प्रतिज्ञा करते हुए पंचपरमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार करते हैं:—

ऐसे सुरासुर मणुसिंदवंदिदं घोदघाइकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं ॥1॥

सेसे पुण तित्थयरे सव्वसिद्धे विसुद्धसब्भावे।
समणे य णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे ॥2॥

ते ते सव्वे समगं समगं पत्तेगमेव पत्तेगं।
वंदामि य वट्टमूते अरहंते माणुसे खेत्ते ॥3॥

किच्चा अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं।
अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेदि सव्वेसिं ॥4॥
तेसिं विसुद्धदंसणणाणपहाणा समं समासेज्ज।
उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती ॥5॥

[पणमं]

आचार्यदेव मंगलाचरण में श्री महावीर भगवान सहित पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करते हैं। अहो, प्रवर्तमान तीर्थ के नायक श्री वर्द्धमानस्वामी को नमस्कार करता हूँ। निश्चय से वे अपने में जो वीतराग शुद्धोपयोगदशा प्रगट हुई, उसके कर्ता हैं और हममें जो धर्मदशा प्रगट हुई, उसके निमित्त होने से भगवान धर्मकर्ता हैं। आचार्यदेव स्वयं धर्मरूप होकर कहते हैं कि—अहो! भगवान ने हम पर अनुग्रह किया, भगवान हमारे धर्मकर्ता हैं; उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

जिन्हें नमस्कार करता हूँ, वे भगवान कैसे हैं? और नमस्कार करनेवाला मैं कैसा हूँ? उन दोनों की पहिचानपूर्वक यहाँ नमस्कार किया है। मैं ज्ञानदर्शन-सामान्यस्वरूप स्वसंवेदनप्रत्यक्ष हूँ और नमस्कार करनेयोग्य जो भगवान हैं, उन्होंने शुद्धोपयोग के सामर्थ्य से चार घातिकर्मों का क्षय किया है और सर्वज्ञ परमेश्वर हुए हैं तथा शुद्धोपयोगरूप धर्म-परिणति के ही कर्ता हैं, राग के कर्ता नहीं हूँ और राग करने का उनका उपदेश नहीं है। इसप्रकार पहिचानकर अर्थात् अपने में भी राग का कर्तृत्व छोड़कर और शुद्धोपयोगरूप धर्म का कर्तृत्व प्रगट करके भाव-नमस्कार किया है।

अपने आत्मा के स्वसंवेदनप्रत्यक्षपूर्वक सर्वज्ञदेव के स्वरूप का भी निर्णय करके उन्हें नमस्कार करता हूँ। अरिहंतदेव को तभी पहिचाना कहा जाता है कि जब अंतर्मुख होकर स्वयं अपने आत्मा का स्वसंवेदन करे। वह अरिहंत की ओर के विकल्प में खड़ा नहीं रहता परंतु शुद्धचेतनतत्त्व को लक्ष में लेकर, उसमें पर्याय को अंतर्लीन करके निर्विकल्प अनुभव सहित सम्यग्दर्शन प्रगट करता है। जैनदर्शन की शैली ही कोई अनोखी है। अंतर के स्वभाव में से मार्ग का प्रारंभ होता है। बाह्य के लक्ष से मार्ग का प्रारंभ नहीं होता।

जिसने स्वसंवेदनप्रत्यक्षपूर्वक आत्मा का निर्णय किया, उसने पंच परमेष्ठी को परमार्थ

नमस्कार किया; और उसने अनुमान से सर्वज्ञ परमात्मा का सच्चा निर्णय करके उन्हें व्यवहार नमस्कार किया; इसप्रकार यह निश्चय-व्यवहार की अलौकिक संधिपूर्वक की बात है।

मात्र पर को नमस्कार नहीं है; अंतर में अपने स्वभाव की ओर उन्मुख होकर स्वयं अपने को नमन किया और शुद्धता प्रगट की, वह निश्चय हुआ, और वहाँ शुभ विकल्प के समय भगवान को नमस्काररूप व्यवहार है। अहो! कुन्दकुन्दस्वामी की अनुभववाणी तो सर्वज्ञ परमात्मा की अनुभववाणी के साथ तुलना हो ऐसी है। आचार्य स्वयं पंचपरमेष्ठी पद में तीसरे पद में विराजमान हैं; वे पंचपरमेष्ठी को नमस्काररूप अपूर्व मंगल करते हैं। यह तो मोक्षलक्ष्मी का स्वयंवर है; स्वयं मोक्षलक्ष्मी का वरण करने जाते हैं, वहाँ पंच परमेष्ठी भगवंतों को अपने आँगन में बुलाते हैं—अहो, पंच परमेष्ठ भगवंतों! अहो, विदेह में विराजमान सीमंधरादि भगवंतों! तथा गणधर भगवंतों! आप सब वीतरागता के इस आनंद-उत्सव में पधारो... पधारो... पधारो! अपनी शुद्धचैतन्य सत्ता का निर्णय करके उसमें मैं आपको पधराता हूँ... और समस्त रागादि परभावों को दूर करता हूँ।—ऐसे मंगलपूर्वक मोक्ष की साधना का यह मंगलस्तंभ रोपा जा रहा है।

सीमंधर भगवान के पास जाकर कुन्दकुन्दाचार्य भव्य जीवों के लिये ऐसी उच्च प्रकार की भेंट लाये हैं। जिसप्रकार पिता परदेश जाकर आये, तब बालकों के लिये खाने-पीने की चीजें या खिलौने लाता है; उसीप्रकार कुन्दकुन्दाचार्य—अपने परमपिता, विदेहक्षेत्र में जाकर भरतक्षेत्र के बालकों के लिये शुद्धात्मा के आनंद की भेंट लाये हैं, वह इस समयसार द्वारा देते हैं कि—लो, तुम्हारे लिये हम यह शुद्ध आत्मा लाये हैं... इसे तुम स्वानुभवगम्य करो!

चैतन्य-विभूति

अरे, कहाँ मेरी चैतन्य विभूति! और कहाँ यह इन्द्रपद इत्यादि बाह्य पुण्य के ठाठ! पुण्य, यह तो चैतन्य की विकृति का फल है, इसमें मेरी महत्ता नहीं है; मेरी महत्ता तो मेरे चैतन्य की विशुद्धिता में ही है। चैतन्य की महत्ता में जो अतीन्द्रिय आनंद का समुद्र उछलता है, उसके समक्ष जगत के किसी भी फल की महत्ता ज्ञानी को नहीं है। ज्ञानी चैतन्य की विभूति के समक्ष जगत की विभूति को धूल के समान समझकर, त्याग करके चैतन्य की साधना करते हैं।

मोक्ष के लिये शुद्ध आत्मा का मंथन

राजकोट में वीर सं. 2497 के वैशाख शुक्ला पंचमी से ज्येष्ठ कृष्ण तृतीया तक पूज्य स्वामीजी के प्रवचन हुए थे—उनका कुछ सारांश यहाँ दिया जा रहा है।

❀ मोक्ष के लिये हे जीव ! तुझे शुद्धरत्नत्रय करनेयोग्य हैं; उन रत्नत्रय के कारणरूप ऐसे कारणपरमात्मा को तू अत्यंत शीघ्र भज—वह तू ही है।

❀ आत्मा स्वयं परम स्वभावरूप कारणपरमात्मा विराजमान है; पर्याय में परभाव होने पर भी धर्मी जीव शुद्धदृष्टि से अपने को कारणपरमात्मारूप देखता है, इसलिये किन्हीं परभावों में उसे आत्मबुद्धि नहीं होती, उनसे अपने को भिन्न ही देखता है।

❀ आत्मवस्तु परम महिमावंत है। यदि आत्मा की महिमा न हो तो फिर जगत में अन्य किसकी महिमा की जाये ? महिमावंत वस्तु ही अपना आत्मा है, उसकी महिमा लाकर उसे ध्येय कर। उसे ध्येय करने से सम्यग्दर्शनरूप कार्य सहज ही हो जायेगा।

❀ परभाव हैं, वे परभाव में हैं; उस समय मैं कैसा हूँ, मैं तो सहज गुणमणि की खान हूँ; पूर्णज्ञान ही मेरा स्वरूप है।—इसप्रकार परभाव से पृथक्करण करके धर्मी अपने को शुद्ध देखता है और शुद्धता को भजता है, परभाव को तजता है।

❀ आत्मा राग की खान नहीं है, आत्मा तो शुद्ध रत्नों की खान है। सर्व परभावों को छोड़कर ऐसे गुणनिधान आत्मा एक का ही जो अनुभव करता है, वह तीक्ष्णबुद्धि है; इन्द्रियों से पार होकर तीक्ष्णबुद्धि द्वारा अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा उसने अपने शुद्धआत्मा को अनुभव में लिया है।

❀ शुभराग में-भक्ति में दया-दान में या शास्त्राध्ययन में लगी हुई बुद्धि को तीक्ष्णबुद्धि नहीं कहते, वह तो स्थूलबुद्धि है, अज्ञानी को भी ऐसे स्थूलभाव तो आते हैं। गुणभेद के विकल्प भी स्थूल में जाते हैं।

❀ भगवान आत्मा, उसके दो अंश—एक त्रिकाली ध्रुव अंश; एक उपजता-विनशता वर्तमान अंश। मोक्ष और मोक्षमार्गरूप कार्य वे दोनों पर्यायरूप अंश हैं; उनके द्वारा अपने कारणपरमात्मा को ही वह भजता है। परमात्मा अपने से कोई अन्य नहीं हैं, स्वयं ही वह है।

❀ हे भव्य! परभाव होने पर भी उनसे रहित जिस कारणपरमात्मा को तू भज रहा है, वह बहुत उत्तम कार्य है, इसलिये अभी तू उसे और अधिक भज।

❀ प्रवीणबुद्धि उसे कहा जाता है कि जो अपने परिपूर्ण तत्त्व को अपने में देखे। जो स्वयं अपने को न देख सके, उसे प्रवीण कैसे कहा जा सकता है ?—वह तो अंधा है।

❀ भाई! दूसरा कुछ तुझे आये या न आये, अपने आनंदमय स्वतत्त्व को देखने के अभ्यास में तू प्रवीण हो। 'समयसार ऐसा जो परमतत्त्व, उसके सिवा अन्य कुछ भी मुझमें नहीं है'—इसप्रकार जो स्वतत्त्व को देखता है, वह शुद्धदृष्टिवंत है।

❀ शुद्धदृष्टि से देखने पर परमतत्त्व एक ही दिखता है, उसमें विभाव नहीं है। इसप्रकार हमारे सहज तत्त्व में विभाव असत् है। विभाव असत् होने से उसकी हमें चिंता नहीं है। सत्रूप ऐसा शुद्ध आत्मतत्त्व ही हमारे हृदय में स्थित है, उसी का हम सतत अनुभव करते हैं; वही मुक्ति की रीति है। इसप्रकार अन्य रीति से मुक्ति नहीं है—नहीं है।

❀ सहज चेतनारूप अपने स्वभाव का ही चिंतवन करते हैं, उसका चिंतवन करने से रागादि परभाव तो असत् हो जाते हैं; ऐसे स्वभाव की कथा, वह धर्मकथा है।

❀ धर्मकथा उसे कहते हैं जो राग को छुड़ाने और वीतरागता को पुष्ट करे। जो कथा राग से लाभ मनवाकर राग की पुष्टि करे, वह धर्मकथा नहीं है, वह तो अधर्मकथा —पापकथा है।

❀ हमारे स्वभाव में राग का कोई अंश है ही नहीं और उस स्वभाव का हम अनुभव करते हैं, वहाँ परभाव की चिंता नहीं रहती। परभाव रहित हमारा जो सत्-स्वभाव, उस एक का ही चिंतवन करते हैं। उसके चिंतन में मोक्ष के आनंद का वेदन होता है।

❀ आत्मा में संसारदशा और सिद्धदशा ऐसी पर्यायें हैं। यदि पर्याय ही न तो कार्य करना

नहीं रहता और वस्तु ही नहीं रहती। इसलिये अशुद्ध या शुद्ध अवस्थाएँ आत्मा में हैं—ऐसा जानना चाहिये।—यह व्यवहार है; इस व्यवहार के आश्रय से निर्विकल्प जीव का अनुभव नहीं होता। निर्विकल्प सहज तत्त्व के अनुभव द्वारा ज्ञानी पुरुषों को शुद्धता प्रगट होती है।

❀ निर्णय करनेवाली पर्याय अंतर में-स्वभाव की ओर एकाग्र होती है। राग में एकाग्रता द्वारा सहज स्वभाव का निर्णय नहीं होता। जिसका निर्णय करना है, उसके सन्मुख होने से ही सच्चा निर्णय हो सकता है; दूसरे की ओर देखने से आत्मस्वभाव का सच्चा निर्णय नहीं होता।

❀ शुद्धदृष्टिवान अति आसन्न-भव्य जीवों को अपने अंतर में परम कारणपरमात्मा ही उपादेय है; उसमें सहज सुख का सागर उल्लसित होता है; क्लेश का जिसमें प्रवेश नहीं है और सुख का समुद्र है—ऐसे उत्तम सारभूत स्वतत्त्व में बुद्धि लगाकर उसी को तुम उपादेय करो।

❀ बंध हो या न हो, समस्त विचित्र मूर्तद्रव्यजाल शुद्ध जीव के रूप से रहित है—ऐसा जिनदेव का शुद्धवचन बुधपुरुषों से कहते हैं—हे भव्य! इस जगप्रसिद्ध सत्य को तू जाना।

❀ देखो, पर से भिन्न शुद्ध जीव को जो बतलाये, उसी को शुद्ध वचन कहते हैं। भगवान महावीर ने आज (वैशाख शुक्ला दसवीं को) केवलज्ञान प्राप्त किया था—उन्होंने शुद्धवचन द्वारा ऐसा शुद्धआत्मा बतलाया है।

❀ शुद्ध तत्त्व पर दृष्टि देने से शुद्धपर्याय विकसित होता है। ऐसी शुद्धदृष्टि में धर्मी सम्यग्दृष्टि को कारण-कार्य दोनों शुद्ध हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि—अहो! परमागम के ऐसे महान अर्थ को सार-असार के विचारवाली सुंदर बुद्धि द्वारा जो जानता है, वह सम्यग्दृष्टि है; उसे हम वंदन करते हैं।

❀ पर्याय को गौण करके शुद्ध अन्तरतत्त्व को देखो। दृष्टि की दिशा को द्रव्य की ओर मोड़कर उसमें एकाग्र होओ।

❀ सर्वज्ञ के सर्वांग से जो वीतराग वाणी प्रवाहित हुई, उसमें चैतन्य का अद्‌भुत स्वरूप ऐसा शुद्ध बतलाया है कि जिसमें परभाव का प्रवेश नहीं है; उदयभव तो नहीं है और क्षायिकादि भावों के भेदों से भी पार है। ऐसा तत्त्व सर्व विकल्पों के राग से पार है और वह सहज वैराग्यमय है।

❀ ऐसा सहज चैतन्यतत्त्व है, वह सर्व परद्रव्यों से तथा परभावों से सर्वथा पराङ्मुख है, इसलिये पर से पराङ्मुख होकर शुद्ध स्वद्रव्य में दृष्टि करने से ऐसे आत्मा का अनुभव होता है। अहो, अकेले स्वद्रव्य के आश्रय से ही मोक्षमार्ग है।

❀ सच्चा वैराग्य शुद्ध आत्मा के आश्रय से होता है। राग के अंश में भी लाभ की बुद्धि रहे, वहाँ सच्चा वैराग्य नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा का सहज तत्त्व तीनों काल रागरहित वैराग्यस्वरूप ही है, राग का प्रवेश उसमें कभी है ही नहीं; ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाले जीव ही सच्चे वैराग्यवान हैं।

❀ पुण्य और पाप दोनों से पार मात्र ज्ञानमय जो भाव है, उसी को वैराग्य कहा है, और ऐसे विरक्त जीव ही बंधन से छूटते हैं; पुण्य के राग में भी जो रक्त है, वह तो बँधता है। पुण्य स्वयं बंधन है, उसके द्वारा मुक्ति नहीं होती।

❀ स्वद्रव्य का ग्रहण किये बिना और परद्रव्य का ग्रहण छोड़े बिना जीव का कल्याण नहीं होता। इसलिये श्रीमद् राजचंद्रजी (छोटी उम्र में भी अंतर के संस्कार से) लिखते हैं कि—

स्वद्रव्य के ग्राहक त्वरा से बनो,
परद्रव्य की ग्राहकता त्वरा से छोड़ो।

स्वद्रव्य तो अतीन्द्रिय आनंद से भरपूर है, उस आनंद में रमणता करो और परद्रव्य में दु:ख है, उसे त्वरा से छोड़ो और स्वद्रव्य के सुख में त्वरा से लीन होओ!

❀ किसी को ऐसा लगे कि जंगल में मुनि को अकेले-अकेले कैसे अच्छा लगता होगा? अरे भाई! जंगल में भी निजानंद में झूलते हुए मुनि तो परम सुखी हैं; जगत के राग-द्वेष का कोलाहल वहाँ नहीं है; किसी परवस्तु के साथ आत्मा का मिलन ही नहीं है, इसलिये पर के संबंधरहित आत्मा स्वयमेव अकेला अपने में परम सुखी है। पर के

संबंध से आत्मा को सुख है—ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव अपने ऐसे आत्मा का अनुभव करते हैं और उसी को उपादेय जानते हैं।

❀ तीक्ष्णबुद्धि अर्थात् स्वसन्मुख ज्ञान, उसमें अपना शुद्ध आत्मा ही उपादेय है; उसमें अन्य कुछ भी उपादेय नही हैं। पर्याय उस शुद्ध आत्मा में प्रविष्ट हो गई, तब उसमें शुद्ध आत्मा उपादेय हुआ।

❀ विकल्पभाव में शुद्ध आत्मा उपादेय नहीं होता, अनुभव में नहीं आता; शुद्ध आत्मा तो स्वसन्मुखबुद्धि में ही उपादेय होता है; स्वसन्मुखबुद्धि, वह निर्विकल्पभाव है, वह विकल्प से पार है।

❀ देखो, यह शुद्ध आत्मा को उपादेय करने की रीति! उसे प्राप्त करने की अर्थात् अनुभव में लेने की यह रीति है।

'आत्मा उपादेय है'—ऐसी शास्त्र की धारण कर ली, उससे कहीं आत्मा उपादेय नहीं हो जाता; परंतु जिनकी बुद्धि स्वद्रव्य में प्रविष्ट हो गई है, ऐसे शुद्धदृष्टिवान पुरुषों को परमात्मतत्त्व उपादेय है —ऐसा कहकर अपूर्व बात समझायी है।

❀ तुम्हें सुख की आवश्यकता हो तो अपने सहज आत्मस्वभाव को ही उपादेय करो, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ उपादेय नहीं है। अपने आत्मा को कैसे उपादेय करना, उसकी यह बात है।

❀ अरे भाई! अपने तत्त्व को किसप्रकार उपादेय करना, उसकी भी तुझे खबर नहीं है! तूने रागादि परभावों को उपादेय माना, परंतु अपने ज्ञानानंदस्वरूप परमात्मा को उपादेय करना तुझे नहीं आया।

❀ अति आसन्नभव्य ऐसे सम्यग्ज्ञानी मुमुक्षु जीव अंतर्दृष्टि द्वारा अपने परमात्मतत्त्व को ही उपादेय करते हैं। वह परमात्मतत्त्व कैसा है ?—कि जयवंत है। सर्व तत्त्वों में वही एक उत्कृष्ट सारभूत तत्त्व है। समस्त परभावों से वह दूर है और सुखसागर का पूर है; मिथ्यात्वादि पापों को छेदने के लिये वह कुठार के समान है। ऐसा सारभूत परमात्मतत्त्व अपने में जयवंत वर्तता है।

❀ शुद्ध आत्मा को जिसने अपने में जयवंत स्वीकार किया, उसने परभावों का अपने में अभाव किया; उनका नाश किया। निर्मल पर्याय हुई, परंतु उस क्षणिक पर्याय के भेद पर उसका लक्ष नहीं है। उस पर्याय को अंतर्मुख करके शुद्ध समयसार पर ही दृष्टि लगायी है। ऐसा शुद्धात्मा ही जगत में सर्वोत्कृष्ट है, वही अपना ध्येय है, वही सारभूत है, वही आनंद का दातार है, संसार के सर्व क्लेश से वह पार है।

❀ अहो, ऐसा तेरा तत्त्व! तुझमें ही विद्यमान है, उसे तू लक्ष में ले तो ले। ऐसे तत्त्व की बात सुनना महाभाग्य से किसी बार मिलता है। ऐसे तत्त्व के निर्णय में ज्ञान को लगाने जैसा है। बाहर की विद्या में तो कोई सार नहीं है, साररूप तो शुद्ध आत्मा है।

❀ तेरा सहज चैतन्यतत्त्व है, वह सुख से ही निर्मित है, वह राग से निर्मित नहीं है; उसमें प्रीति या अप्रीति अर्थात् राग या द्वेष नहीं है; वह तो सहज आनंद का ही धाम है। राग तो बहिर्मुख है और चैतन्यतत्त्व तो सर्वथा अंतर्मुख है।—ऐसे अपने तत्त्व को अनुभवगोचर करना, वह बुद्धिमान पुरुषों का कर्तव्य है; वे ही सचमुच बुद्धिमान और विचारवान हैं कि जो अंतर में अपने सहज तत्त्व की रुचि करके उसे अनुभवगोचर करते हैं।

❀ जिसने सुख से ही निर्मित ऐसा अपना शाश्वत पद देखा, वह संसार के दुष्कृतरूप सुख की वांछा क्यों करेगा? आकाश जैसा अकृत आत्मा, वह सुखामृत का सागर है, उसकी रुचि करते ही संसार-सुख की वांछा छूट जाती है। चैतन्य-सुख की ओर उन्मुख होने पर संसार के सुख भी एकांत दुःख ही भासित होते हैं।

❀ अहो! जो अंतर्मुख होकर परमतत्त्व की भावनारूप परिणमित होते हैं, वे भव्य जीव भवदुःख से छूटकर मोक्षसुख को प्राप्त करते हैं। ऐसा तत्त्व प्रत्येक जीव में सत् है; उसकी भावना करने से भव का नाश होता है। राग द्वारा उसकी भावना नहीं होती, उसमें अंतर्मुख परिणति द्वारा ही उसकी भावना होती है। वह भावना रागरहित है और मोक्षसुख का कारण है।

❀ सिद्धलोक में जैसे सिद्धभगवंत अपने निज-गुणसहित विराजमान हैं, वैसे ही निजगुणसहित तेरा तत्त्व भी तुझमें ही विराजमान है। ऐसे तत्त्व की भावनारूप परिणमित जीव वंदनीय है।

❀ धर्मी का ध्येय अपने में ही है, बाह्य में नहीं है। धर्मी जानता है कि सर्व विभावगुण-पर्यायों से रहित शुद्धअंतःतत्त्वरूप अपना स्वद्रव्य ही मुझे उपादेय है।

❀ —ऐसे उपादेय तत्त्व का निर्णय करके उसके सन्मुख ढला, वहाँ समस्त विभावभावों का लक्ष छूट गया, इसलिये वे हेय हो गये। इन्हें हेय करूँ—ऐसे विकल्प द्वारा कहीं परभाव नहीं छूटते। शुद्ध स्वद्रव्य का ग्रहण होने से परभाव छूट जाते हैं।

भाई! दूसरे भाव तो तूने अनंतबार किये हैं, अब अपने शुद्धतत्त्व की भावना कर तो उसमें से परमानंद के फुहारे छूटेंगे। अहो, ऐसा मेरा तत्त्व!—इसप्रकार अंतर में विचार और निर्णय करके उसका अनुभव करने से जीव कृतकृत्य हो जाता है।

स्वानुभव की किरणें

स्वानुभवरूपी सूर्य की किरणों द्वारा ही मोक्षमार्ग दिखायी देता है। जहाँ स्वानुभव की किरणों का प्रकाश नहीं है, वहाँ मोक्षमार्ग दिखायी नहीं देता। राग तो अंधकारमय बंधभाव है, उसके द्वारा मोक्षमार्ग की साधना कहाँ से होगी? अरे, बंधभाव और मोक्षभाव के बीच भी जिसे विवेक नहीं है, उसे शुद्धात्मा का वीतराग संवेदन कहाँ से होगा? और स्वानुभव की किरणें फूटे बिना मोक्षमार्ग का प्रकाश कहाँ से प्रगट होगा? अज्ञानी के स्वानुभव का कण भी नहीं है तो फिर मोक्षमार्ग कैसा? स्वानुभव के बिना जो भी भाव करे, वे सब भाव बंधमार्ग में हैं, वे कोई भाव मोक्षमार्ग में नहीं आते, और उनसे मोक्षमार्ग की साधना नहीं होती। स्वानुभव का सूर्य उदित हो, तब मोक्षमार्ग सच्चा।

जयपुर में साधर्मियों का सुंदर मेला

✾ वीतराग विद्या के प्रचार का महान उत्सव ✾

हर प्रांत के साधर्मियों के मिलन का उमंग भरा वातावरण

❀ ❀ ❀

जैननगरी जयपुर अर्थात् भारतदेश की सुंदर नगरी, राजस्थान की राजधानी; जैन विद्वानों की खान; जो लगभग पच्चीस हजार जैनियों और उनसे भी दस गुने जिन भगवंतों से सुशोभित है—ऐसी उस जयपुरनगरी में पूज्य श्री कानजीस्वामी 20 दिन रहे और धर्मप्रभावना तथा वीतराग विद्या के प्रचार का जो महान उत्सव हुआ, उसका प्रारंभिक सचित्र विवरण गतांक में दिया जा चुका है, जिसे पढ़कर जिज्ञासुओं ने प्रसन्नता व्यक्त की थी और विशेष विवरण पढ़ने के लिये आतुर थे, जो यहाँ दिया जा रहा है। [ब्रह्मचारी हरिलाल जैन]

❀ ❀ ❀

अहमदाबाद से पूज्य स्वामीजी वायुयान से जयपुर पधारे। ज्येष्ठ कृष्णा 6 को जयपुर में स्वागत हुआ। टोडरमल स्मारक भवन में श्री प्रवचनसार तथा श्री समयसार पर प्रवचन प्रारंभ हुआ। श्री साहू शांतिप्रसादजी की अध्यक्षता में सम्मेलन हुआ; जिसमें पूज्य गुरुदेव ने आशीर्वादसहित ढाई हजारवाँ वीर निर्वाण महोत्सव मनाते हुए प्रोत्साहन दिया। जैनधर्म की वीतराग विद्या के प्रचार हेतु शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया जिसमें हजारों मुमुक्षुओं ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। इस अवसर पर देश के कोन-कोने से 152 नगरों के करीब दो हजार मुमुक्षु भाई-बहिन जयपुर आये थे।

अहा, गुरुदेव की मंगल छाया में धार्मिक मुमुक्षुओं का कैसा सुंदर सम्मेलन! अध्यात्मप्रेमी सज्जनों के इस सम्मेलन में अनुभवी-ज्ञानी, त्यागी-व्रती, विद्वान-साहित्यकार, श्रीमंत-व्यापारी तथा अध्यात्मरसिक हजारों मुमुक्षु उल्लासपूर्वक भाग लेकर कार्यक्रमों की शोभा

बढ़ाते थे... जैनधर्म का ऐसा सुंदर प्रभाव तथा अध्यात्ममय वातावरण देखकर हृदय प्रसन्नता का अनुभव करता था... साधर्मियों को देख-देखकर हृदय में आनंद वात्सल्य उमड़ता था।

वाह ! टोडरमल स्मारक भवन में 20 दिन तक साधर्मियों का सुंदर मेला भरा था। कैसा आनंदपूर्ण धार्मिक वातावरण था। साधर्मी परस्पर अध्यात्म की चर्चा करते थे; सब अपने-अपने ढंग से साधना में लीन थे—कोई सामायिक में तो कोई स्वाध्याय में, कोई श्रवण में तो कोई चर्चा में; कोई लेखन में तो कोई पूजा-भक्ति में प्रवृत्त रहते थे। कोई आसपास के जिनमंदिरों की वंदना में जाते और वहाँ के मनोज्ञ जिनबिम्बों का वर्णन करके दूसरों को भी दर्शन के लिये प्रेरित करते थे। चारों ओर धार्मिक वातावरण दिखायी देता था... सब जैनधर्म की साधना में रत थे... सबके मन में एक ही ध्येय था कि आत्मा की मुमुक्षुता का पोषण हो; आत्मा के स्वभाव को अनेक पक्षों से जानकर अध्यात्मभावों का विकास एवं आनंदमय स्वानुभव की प्राप्ति हो। कोई उत्तरप्रदेश के तो कोई दक्षिण के, कोई पूर्व के तो कोई पश्चिम के और कोई मध्यप्रदेश के... इसप्रकार चारों ओर से मुमुक्षु साधर्मीजन एकत्रित हुए थे। भिन्न-भिन्न देश, भिन्न-भिन्न वेश और भिन्न-भिन्न भाषा, तथापि सबका ध्येय एक ही था।

अहा, ऐसे उत्तम ध्येयवाले हजारों साधर्मियों के मिलन का वातावरण मुमुक्षु को आकर्षित करता था। प्रातः साढ़े सात बजे पूज्य स्वामीजी का प्रवचन प्रारंभ होता था, परंतु उससे पूर्व आधे घंटे तक आध्यात्मिक भजनों का कार्यक्रम चलता था और जिनमंदिर में पूजा के समय बड़ी भीड़ रहती थी। प्रवचन के पश्चात् शिक्षणवर्ग का कार्यक्रम चलता था। भोजनादि की व्यवस्था भी सादा और सुंदर थी। दोपहर को भी स्वाध्याय की प्रवृत्ति चलती ही रहती थी। दोपहर को ढाई बजे से भजन और तीन बजे पूज्य स्वामीजी का प्रवचन प्रारंभ होता था। प्रवचन की अखंड धारा में जयपुर का जोरदार तूफान भी बाधा न डाल सका। प्रवचन के बाद फिर शिक्षणवर्ग चलते थे। यात्रियों के आने-जाने हेतु एवं नगर के श्रोताजनों के लिये मोटर-बसों की अच्छी व्यवस्था थी जो सुबह से शाम तक चलती रहती थी। चारों ओर आध्यात्मिक वातावरण के कारण जयपुर का वह उपनगर मानों ज्ञाननगर ही बन गया था। ज्ञान का महायज्ञ हो रहा था। गुरुदेव भी मुमुक्षुओं को विविध पुस्तकों की भेंट देकर ज्ञान का वितरण कर रहे थे।

गुरुदेव के सान्निध्य में ज्येष्ठ कृष्णा दसवीं को श्री साहू शांतिप्रसादजी की अध्यक्षता में भगवान महावीर निर्वाण के ढाई हजारवें वर्ष का उत्सव मनाने संबंधी सम्मेलन था। जिनशासन प्रभवना के हेतु सबने अपने विचार व्यक्त करते हुए उत्साह प्रदर्शित किया था और गुरुदेव ने इस महान कार्य का अनुमोदन किया था। भगवान महावीर का ढाई हजारवाँ निर्वाणोत्सव मनाने की बड़ी विशाल रूपरेखा तैयार हुई है; तब हमें इस मौके पर अपने बालकों को नहीं भूलना चाहिये और ऐसा कुछ आयोजन करना चाहिये, जिससे लाखों बालकों में धार्मिक संस्कारों का सिंचन हो। छोटे से छोटे जैन गृहस्थ को भी ऐसा अनुभव हो कि वह भी महावीर प्रभु के निर्वाणोत्सव में भाग ले रहा है। जैन समाज में परस्पर प्रेम-वात्सल्य एवं एकता की वृद्धि होना भी अत्यंत आवश्यक है।

श्री मनोहरलालजी वर्णी भी पूज्य स्वामीजी से मिलने के लिये दो दिन गोदीका भवन में आये थे और प्रेमपूर्वक परस्पर चर्चा की थी। वर्णीजी ने प्रसन्नतापूर्वक कहा था कि—मुझे आपके प्रति कुदरती वात्सल्य आता है; उसी से प्रेरित होकर मैं आपसे मिलने आया हूँ; बहुत दिनों से मिलने की उत्कंठा थी; लोग आपके विषय में अनेक चर्चाएँ करते हैं परंतु विरोध की चर्चा मैं नहीं सुनता। अध्यात्म ज्ञान की प्रभावना हो, वह उत्तम है।—इसप्रकार उन्होंने प्रेम और प्रसन्नता व्यक्त की थी।

ज्येष्ठ शुक्ला तीज के दिन भोपाल निवासी भाई श्री हेमचंद्रजी ने गुरुदेव के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ली थी। अनेक सुशिक्षित युवक भी वैराग्यपूर्वक अध्यात्म में कैसा रस ले रहे हैं, यह देखकर समाज प्रभावित होता था। गुरुदेव के प्रताप से अनेक युवक अपने जीवन को आत्मसाधना में लगा रहे हैं।

ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी—श्रुतपंचमी का दिन भी आनंदपूर्वक मनाया गया था। प्रातः काल जिनवाणी की रथयात्रा निकाली गई थी। ज्ञान का दिन और ज्ञानप्रभावना का उत्सव—इन दोनों का मेल हो गया था। अपने प्रवचन में गुरुदेव ने श्रुत पंचमी का इतिहास बतलाकर धरसेन स्वामी आदि दिगम्बर जैन मुनिवरों की तथा वीतरागी श्रुतज्ञान की महिमा बतलायी थी और कहा था कि जिनवाणी महापूज्य है। एक ओर समयसारादि अध्यात्म-श्रुतज्ञान अखंड विद्यमान हैं जो आत्मा का शुद्धस्वरूप बतलाते हैं; दूसरी ओर षट्खंडागम जैसे सिद्धांत-

श्रुतज्ञान भी अखंड रह गये—इसप्रकार निश्चय और व्यवहार दोनों प्रकार के परमागम द्वारा वीतरागी श्रुत की अखंड धारा चल रही है। उसके बहुमानपूर्वक अभ्यास करनेयोग्य है तथा ऐसे ज्ञान का प्रचार करने जैसा है। अहा, मुनि तो सर्वज्ञ समान हैं।—ऐसा कहकर उनकी अत्यंत महिमा की थी।

प्रवचन के पश्चात् श्रुतज्ञान-जिनवाणी की पूजा हुई थी; हजारों भक्तों ने भेंट देकर जिनवाणी माता का सन्मान किया था। जयपुर में वीतराग श्रुत का महान प्रभाव देखकर हृदय तृप्त होकर कहता था कि—वाह जिनवाणी माता! हजारों बालक तेरी शरण में निजहित साध रहे हैं... गुरुदेव द्वारा तेरा प्रभाव सारे भारत में फैल रहा है... तेरा जयजयकार हो रहा है! श्रुत ज्ञानपंचमी की रात्रि को पूज्य बहिनश्री-बहिन ने श्रुतभक्ति करायी थी।

जयपुर में अध्यात्मरसिक साधर्मियों के मेले का वह वातावरण जिन्होंने देखा है, वे बारंबार उसका स्मरण करके मुमुक्षुता की पुष्टि करते हैं। धार्मिक मेले या धार्मिक सम्मेलन कैसे होते हैं, उनका यह एक आदर्श था। जहाँ प्रतिदिन हजारों शास्त्र खुलते थे और अध्यात्म-चर्चा का प्रवाह चलता था।

इतने विशाल सम्मेलन के आयोजक अकेले सेठ श्री पूरणचंद्रजी गोदीका थे; लगातार बीस दिन तक छोटे-बड़े प्रत्येक कार्यक्रम में उपस्थित रहकर उन्होंने उत्सव को सफल बनाया था। शिक्षण वर्गों के आयोजन में पंडित हुकमचंदजी ने परिश्रम पूर्वक सारे कार्यक्रम को सफल बनाया था। जयपुर के नगरजनों ने भी उत्सव की सफलता में अच्छा योग दिया था। हजारों मुमुक्षुओं का धार्मिक उत्साह भी उत्सव की सफलता में मुख्य कारणभूत था। एकसाथ हजारों भाई-बहिन अन्य सबकुछ भूलकर प्रातःकाल से अर्धरात्रि तक अध्यात्मज्ञान के अभ्यास में लगे रहते थे; उसे देखकर हृदय से ऐसे उद्‌गार निकलते थे कि—वाह! धन्य है अपने इन सब साधर्मियों को!—

'संग साधर्मिनकौ नित दीजै...'

ज्येष्ठ शुकला 6 को जयपुर के आदर्शनगर में (जहाँ मुख्यतः मुलतान से आये हुए जैन परिवार रहते हैं और अत्यंत मनोहर जिनमंदिर का निर्माण हो रहा है वहाँ) दोपहर को भक्ति-पूजा तथा पूज्य स्वामीजी का प्रवचन हुआ था। यहाँ के जिनमंदिर में मुलतान (पाकिस्तान) से

साथ लायी गई करीब 100 जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं। पूज्य गुरुदेव दोपहर को डेढ़ बजे वहाँ पधारे, उससमय का वातावरण बड़ा उमंगपूर्ण था। दोपहर के समय जिनेन्द्र पूजा एवं भक्ति का वातावरण सचमुच अद्‌भुत था। वहाँ 'लाउडस्पीकर' नहीं था, फिर भी हजारों कण्ठ एकस्वर में मंदिर को गुँजा रहे थे। पच्चीस वर्ष पहले पाकिस्तान से भागते समय वे भक्त जिनप्रतिमाओं को भी साथ लाये थे। कहते हैं कि—जब कोई भी सामान साथ लाना मुश्किल था, उससमय वे सैकड़ों जिन-प्रतिमाएँ चमत्कारिकरूप से वायुयान में साथ आ गई थीं। उस समय का स्मरण करके भक्तों के हृदय भक्ति से उल्लसित हो उठते थे। अद्‌भुत था वह भक्ति का दृश्य! छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष मिलकर करीब एक हजार जिनेन्द्रभक्तों ने बड़े उल्लासपूर्वक उस पूजन-महोत्सव में भाग लिया था। पूज्य स्वामीजी भी पूजा में बैठे थे।

पूजन के पश्चात् वहीं पूज्य स्वामीजी का प्रवचन हुआ था। गुरुदेव ने समयसार की 11वीं गाथा द्वारा सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझाया था। जयपुर में रात्रि को तत्त्वचर्चा भी चलती थी। विद्वानों की अध्यात्मगोष्ठी एवं तत्त्वचर्चा से सबको बड़ी प्रसन्नता होती थी।

ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी के सायंकाल स्वामीजी करीब सौ यात्रियों के साथ पद्मपुरी क्षेत्र में पद्मप्रभु भगवान के दर्शन करने गये थे। पद्मपुरी जयपुर से 20 मील दूर है; वहाँ संवत् 2001 में एक खेत में से पद्मप्रभु भगवान की प्रतिमा निकली थी; तभी से इस क्षेत्र में पुण्य-प्रभाव का प्रारंभ हुआ। एक विशाल उन्नत जिनमंदिर का निर्माण हुआ जिसका कार्य अब भी चल रहा है। मंदिर का उच्च शिखर अत्यंत सुंदर है और भीतर गुम्मट का दृश्य भी शोभायमान लगता है। सुंदर गंधकुटी पर विराजमान पद्मप्रभु की गुलाबी रंग की प्रतिमाजी मनोज्ञ एवं शांतभाव प्रेरक हैं। तदुपरांत अन्य अनेक जिनबिम्ब भगवान बाहुबलि आदि भी विराजमान हैं। पूज्य गुरुदेव के साथ आनंदोल्लासपूर्वक दर्शन करके अर्धपूजा की और पूज्य बहिनश्री-बहिन ने पद्मप्रभु भगवान की अद्‌भुत भक्ति करायी। वास्तव में वीतरागी भगवान की सच्ची भक्ति वीतरागता के ध्येय द्वारा ही होती है, संसार के ध्येय द्वारा भगवान की भक्ति नहीं हो सकती। प्रत्येक जैन का कर्तव्य है कि शुद्धात्मा के प्रतिबिम्बरूप अपने वीतराग अरिहंतदेव के दर्शन-पूजन में मात्र वीतरागभावना की पुष्टि का ही हेतु रखे। संसार के लाभ का हेतु (पुत्रप्राप्ति, धनप्राप्ति, निरोगता आदि पाप का हेतु) किंचित् भी न रखे... और अरिहंतदेव के सिवा अन्य सरागी देव-देवियों को स्वप्न में भी पूज्य न माने।

— ऐसे भाव की स्पष्टतापूर्वक पद्मप्रभु के दर्शन-पूजन-भक्ति के पश्चात् मंदिर के प्रांगण में बैठकर गुरुदेव ने कहा कि यह जिनप्रतिमा तो शुभराग का निमित्त है; वास्तव में तो अंदर आत्मा स्वयं शाश्वत् चैतन्य प्रतिमा है, उसके दर्शन बिना तथा आश्रय बिना अन्य किसीप्रकार कल्याण नहीं होता। यह बाहर की जिन-प्रतिमा तो अंतर की जिन-प्रतिमा के स्मरण का निमित्त है; उसके बदले जिन-प्रतिमा के दर्शन से धन-पुत्रादि की इच्छा करना अथवा रोगादि मिटने की इच्छा करना, वह तो पाप है; और ऐसी इच्छा के बिना भगवान के दर्शन-पूजन करे तो वह शुभभाव है; परंतु आत्मा का कल्याण और धर्म तो अंतर में आत्मा स्वयं निर्विकल्प शुद्ध चैतन्यप्रतिमा शाश्वत् टंकोत्कीर्ण है, उसे लक्ष में लेकर उसी के आश्रय से होता है; उसके आश्रय बिना अन्य किसी प्रकार जीव का कल्याण नहीं है। बिना कुरेदी हुई शाश्वत् ज्ञायकमूर्ति जिनप्रतिमा तो आत्मा स्वयं है; वही अपना देव है और वही चैतन्य-चिंतामणि है, उसके दर्शन तथा चिंतन करने से मिथ्यात्वादि पापों का नाश होता है और इष्टपद की सिद्धि होती है।

गुरुदेव के साथ पद्मप्रभु के दर्शन से तथा ऐसी अध्यात्मचर्चा के श्रवण से सबको हर्ष हुआ और जय-जयकारपूर्वक सब जयपुर आये। गुरुदेव का आगमन एवं भक्ति आदि देखकर पद्मपुरी के व्यवस्थापक भी प्रसन्न हुए थे।

जयपुर से पद्मपुरी जाते हुए बीच में सांगानेर आता है जो तीन-चार सौ वर्ष पूर्व राजस्थान की राजधानी थी; उसके बाद जयपुर नगरी का निर्माण हुआ है। सांगानेर में छह-सात प्राचीन विशाल जिनमंदिर हैं और उनमें सैकड़ों मूर्तियाँ विराजमान हैं। तदुपरांत पुरानी राजधानी आमेर में भी प्राचीन जिनमंदिर दर्शनीय हैं।

ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी की रात्रि को टोडरमल स्मारक भवन में आगन्तुक विद्वानों एवं समस्त मुमुक्षुओं का विशाल सम्मेलन पूज्य गुरुदेव की मंगल उपस्थिति में हुआ था। सोनगढ़ के प्रसिद्ध विद्वान श्री पंडित खीमचंदजी की अध्यक्षता में 152 ग्रामों के मुमुक्षुओं ने अध्यात्म-तत्त्व-ज्ञान के प्रचार हेतु क्रांतिकारी आंदोलन जो अध्यात्म-संदेश विचार प्रगट किये थे। 'आत्मधर्म' मासिक-पत्र द्वारा पूज्य गुरुदेव का जो अध्यात्म-संदेश मिलता है, उसकी सभी वक्ताओं ने खूब प्रशंसा की थी, और 'आत्मधर्म' के अत्यधिक विकास की भावना व्यक्त की

थी। आत्मधर्म के प्रति भारत के जिज्ञासुओं को कितना आदरभाव है और उसके द्वारा भारत में कितना महान प्रचार हो रहा है, उसे देखकर आश्चर्य होता था। सोनगढ़ में रहकर तो हमें ख्याल भी नहीं था कि पूज्य गुरुदेव का भारत में कितना अध्यात्म-प्रभाव फैल रहा है—वह यहाँ जयपुर में अपनी आँखों से देखा।

इस अवसर पर राजस्थान जाग उठा; मध्यप्रदेश तो जागृत था ही; वहाँ तो सागर निवासी सेठ श्री भगवानदास शोभलालजी की अध्यक्षता में मध्यप्रदेशी मुमुक्षु मंडल द्वारा सुव्यवस्थित सुंदर प्रचार-कार्य चल रहा है। उत्तरप्रदेश में जागृति आयी है और उत्तरप्रदेशीय मुमुक्षु मंडल की स्थापना करके संगठित प्रचार हेतु योजना पर विचार किया गया है; दक्षिण प्रदेश में से भी उत्साही युवक कार्यकर्ता जयपुर आये थे और कन्नड़भाषा में प्रचार की इच्छा व्यक्त की थी। जैनबालपोथी आदि साहित्य कन्नड़भाषा में प्रकाशित करके सेठ श्री जुगराजजी की ओर से अच्छा प्रचार किया गया है। (जिज्ञासुओं को जानकर आनंद होगा कि कन्नड़ आवृत्ति के साथ-साथ जैनबालपोथी एक लाख का आँक पार कर चुकी है) इसप्रकार भारत की चारों दिशाओं में गुरुदेव के प्रताप से वीतरागी तत्त्वज्ञान का जोरदार आन्दोलन चल रहा है... ज्ञानप्रचार की बाढ़ आयी हुई है। श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ संस्था के अध्यक्ष श्री नवनीतलाल जवेरी भी ज्ञानप्रचार की उत्कट भावना रखते हैं; और जहाँ-जहाँ मुमुक्षु मंडलों की स्थापना हो चुकी है, उन्हें प्रेरणा एवं प्रोत्साहन दे रहे हैं।

इसप्रकार 18 दिन बीत चुके हैं और दो दिन शेष हैं। शिक्षणशिविर की परीक्षाएँ चलने लगीं... बाहर से आये हुए मुमुक्षु अब जाने की तैयारी करते-करते जयपुर-यात्रा की स्मृति रूप में वहाँ मिलनेवाली वस्तुएँ खरीदने लगे। जिसप्रकार जैनपुरी जयपुर में अनेक जिनबिम्ब विराजमान हैं, उसीप्रकार भारत में नव-प्रतिष्ठित होनेवाले अधिकांश जिनबिम्ब जयपुर में ही बनते हैं; उन वीतरागी जिनमूर्तियों का विशाल संग्रह भी देखने योग्य है। जयपुर के अनेक जिनमंदिर जौहरी बाजार के आसपास स्थित हैं। बड़ा मंदिर, दीवानजी का मंदिर, ढोलियान मंदिर, चौबीसी मंदिर, खानिया मंदिर, आदि अनेक दर्शनीय मंदिर हैं। गुरुदेव के साथ इन मंदिरों के दर्शन करते हुए आनंद होता था।

152 नगरों से आये हुए साधर्मी मुमुक्षुओं ने उत्साहपूर्वक मंदिरों की वंदना की;

स्वामीजी के व्याख्यान सुने, शिक्षणशिविर में अध्ययन किया और परस्पर परिचय प्राप्त किये। अंत में परीक्षा दी और उत्तीर्ण हुए। ज्येष्ठ शुक्ला नववीं के दिन सबको पूज्य गुरुदेव के हाथ से प्रमाणपत्र एवं पारितोषिक–वितरण समारोह हुआ।

कोई बी.ए., कोई एम.ए., कोई इंजीनियर, कोई न्यायाधीश—इसप्रकार लौकिक विद्या में उच्च पदवियाँ धारण करनेवाले युवक भाई–बहिनें जब प्रमाणपत्र लेने के लिये खड़े होते थे, तब उनके चेहरे पर ऐसा भाव होता था मानों लौकिक शिक्षा के सामने अलौकिक वीतरागी तत्त्वज्ञान का महत्त्व वे समझ रहे हैं। पुरुषों को प्रमाणपत्र तथा पारितोषिक की पुस्तकें गुरुदेव के शुभहस्त से तथा महिलाओं को पूज्य बहिनश्री–बहिन के शुभहस्त से दी जा रही थीं।

सुशिक्षित युवकों ने जिस उत्साह एवं जिज्ञासापूर्वक धार्मिक शिक्षा में भाग लिया और अपने–अपने नगर में वीतराग विज्ञान के प्रचार की जो उत्तम भावना पायी गई, वह जैनधर्म की उन्नति का चिह्न है, जिसे देखकर आनंद होता था। सर्वत्र तात्त्विक विचार की एकता का सुंदर वातावरण था और सब अपनी–अपनी साधना में लीन थे। न तो कहीं विसंवाद था, न वाद–विवाद था और नहीं थी शंका–कुशंका... सबका एक ही ध्येय था कि आत्मा का हित कैसे हो! भिन्न–भिन्न प्रदेश के साधर्मियों को देखकर सब हर्षित होते थे और धर्मप्रेम के लिये एक–दूसरे को धन्यवाद देते थे। वह वातावरण देखकर पूजा में आनेवाली इन पंक्तियों का स्मरण होता था कि—

तिस थान धर्म दूजो न कोय,
जिनराज तणो इक धर्म होय।

—इसप्रकार ज्येष्ठ शुक्ला दसवीं के दिन 20 दिन से चलनेवाला वह ज्ञानयज्ञ आनंदपूर्वक समाप्त हुआ। उस ज्ञान–महोत्सव के हर्षोपलक्ष में जैनधर्म–प्रभावक महान रथयात्रा निकाली गई।

पिछली रात्रि को दो से प्रातः पाँच बजे तक आँधी के साथ मूसलाधार वर्षा हुई थी और प्रातः छह बजे तो धामधूम से रथयात्रा की तैयारी होने लगी। वर्षा का वातावरण देखकर चिंता होती थी कि रथयात्रा कैसे पूरी होगी?—परंतु प्रकृति तो जैनशासन के अनुकूल थी... रात्रि की वर्षा ने जयपुर के रास्तों को धोकर साफ कर दिया और प्रातःकाल सख्त गर्मी की जगह शीतल

मधुर वातावरण ने ले ली।—इसप्रकार मानो प्रकृति स्वयं ही जिनेन्द्र भगवान की सेवा में लग गई थी। न वर्षा.. न गर्मी.. ऐसे शांत स्वच्छ मधुर वातावरण में विशाल रथयात्रा का प्रारंभ हुआ। कितनी भव्य थी वह रथयात्रा! अजमेर से आया हुआ ऐरावत हाथी और श्वेत अश्वों का सुंदर सुनहरा रथ उस रथयात्रा की शोभा बढ़ा रहे थे। करीब सौ वर्ष पूर्व निर्मित अजमेर का वह रथ सारे राजस्थान में प्रसिद्ध है। उस रथ में भगवान को विराजमान किया गया... सारथी के रूप में पूज्य स्वामीजी बैठे थे। जिनरथ के वे सारथी प्रसन्न मुद्रा में थे। जैनधर्म का ऐसा महान प्रभाव देखकर हजारों हृदय आनंदित होते थे। अनेक बैंडबाजे और इक्कीस हाथियों से सुशोभित उस जुलूस में सबसे आगेवाले हाथी पर गोदीकाजी के सुपुत्र सुधीरभाई और सुशीलभाई धर्मध्वज लहराते थे। रथयात्रा अजमेरी गेट के पास महावीर पार्क से प्रारंभ होकर त्रिपोलिया बाजार, जौहरी बाजार, बापू बाजार तथा सांगानेरी दरवाजा–रामलीला मैदान के पास होती हुई म्यूजियम के विशाल मैदान में समाप्त हुई; उस समय इक्कीस हाथी एकसाथ सूंढ़ उठाकर सलामी दे रहे थे। करीब पचास हजार दर्शकों की भीड़ से मैदान भर गया था और जय-जयकार से वातावरण गूँज रहा था। जुलूस के मार्ग में आनेवाले मकानों की छतें और छज्जे दर्शकों की भीड़ से खचाखच भर गये थे। चौड़े रास्तों के लिये जो प्रसिद्ध है उस जयपुर के मार्ग भी आज की रथयात्रा के लिये सँकरे पड़ रहे थे। जब भगवान का रथ जौहरी बाजार से होकर गुजरा तब तो अद्‌भुत दृश्य था... ऐसा लगता था मानो सारा जयपुर नगर जैनधर्म का प्रभाव देखने के लिये उमड़ पड़ा हो! जैनशासन का तथा पूज्य स्वामीजी का ऐसा अद्‌भुत प्रभाव देखकर हृदय गद्‌गद्‌ हो जाता था।

रथयात्रा समाप्त हुई... दोपहर को पूज्य स्वामीजी के प्रवचन एवं आभार-विधि सहित यह ज्ञान-महोत्सव पूर्ण हुआ।

ज्येष्ठ शुक्ला 11 के प्रातःकाल जयपुर में सीमंधर भगवान के दर्शन करके पूज्य स्वामीजी ने 30 यात्रियों सहित वायुयान में अहमदाबाद के लिये प्रस्थान किया। जयपुर की जैन जनता ने स्वामीजी को हार्दिक भावभीनी विदा दी। अहमदाबाद के भव्य जिनालय में उस दिन दोपहर का प्रवचन श्री समयसार गाथा 15 पर हुआ। सायंकाल प्रवचन एवं भक्ति के पश्चात् स्वामीजी ने अहमदाबाद से प्रस्थान किया और सायंकाल ही बागोदरा ग्राम पहुँचे। दूसरे दिन प्रातःकाल ज्येष्ठ शुक्ला 12 को भावनगर पधारे जहाँ पूज्य स्वामीजी का हार्दिक

स्वागत किया गया। भावनगर में 4 दिन रहकर वहाँ की जनता को अध्यात्मरस का पान कराया और अषाढ़ कृष्णा 2 के प्रात: 8बजे सोनगढ़ में गुरुदेव का मंगल आगमन हुआ। सोनगढ़ में पूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रात:काल श्री नियमसारजी के पर तथा दोपहर को श्री नाटक समयसार पर स्वामीजी के अध्यात्मरसपूर्ण प्रवचन चल रहे हैं... मधुर आध्यात्मिक वातावरण में मुमुक्षुगण लाभ ले रहे हैं।

[जयपुर की भव्य रथयात्रा के चित्र तार से मँगवाये थे परंतु समय पर मिल नहीं सके।]

—सम्पादक

ज्ञानदृष्टि जिन्हके घट अंतर,
निरखें द्रव्य सुगुण पर्याय।
जिनके सहजरूप दिन प्रतिदिन,
स्याद्वाद साधन अधिकाय।
जे केवलि प्रणीत मारग मुख,
चित्र चरण राखे ठहराय।
ते प्रवीण करि क्षीण मोहमल,
अविचल होंहि परमपद पाय॥

भगवान पारसनाथ

[लेखांक : 7, गतांक से आगे]

भगवान पारसनाथ का पवित्र जीवन-चरित्र चल रहा है। पूर्व के दस भव में मरुभूति, बाद में हाथी, अग्निवेग मुनि, स्वर्ग, वज्रनाभि चक्रवर्ती, स्वर्ग, आनंदमुनि तथा स्वर्ग के भव पूर्ण करके हमारे चरित्रनायक वाराणसी में तेईसवें तीर्थंकर के रूप में अवतार ले चुके हैं, वे एक बार वनविहार करने को निकले उस समय क्या घटना होती है? उसका वर्णन आप पढ़िये।

❀❀❀

वनविहार के लिये निकले हुए पारसकुमार के साथ उनका मित्र सुभोमकुमार भी था। राजकुमार पारसनाथ को देखकर जनता अत्यंत आनंदित होती थी। अरे, वन में हिरण इत्यादि पशु भी प्रभु को देखकर आनंदित होते हुए आश्चर्यपूर्वक शांतचित्त से देखते थे कि अरे! यह कोई महापुरुष हैं कि जिन्हें देखकर हम भयभीत नहीं होते, उल्टी शांति प्राप्त होती है! वन के पुष्प भी प्रभु को देखकर खिल जाते। वन की शांत प्राकृतिक शोभा को देखते हुए राजकुमार विचार कर रहे हैं कि मेरे को भी अब वनविहारी होने का समय निकट ही है। इसप्रकार उत्तम भावनापूर्वक वनविहार कर रहे हैं; इतने में एक घटना हुई... इसी वन में एक त्रिदंडी साधु को देखा। कौन है यह तपस्वी? उसके लिये हमको पूर्वभव पर किंचित् दृष्टि डालना होगी।

पारसनाथ भगवान पूर्वभव में जब अग्निवेग मुनि थे, तब उनका भाई कमठ का जीव अजगर होकर उन्हें निगल गया था। अजगर का जीव मरकर नरक में गया; फिर कमठ का जीव शिकारी भील हुआ, जिसने वज्रनाभि-मुनि को बाण से मार डाला; फिर सिंह होकर आनंद-मुनि को मारकर खा गया। वहाँ से पाँचवीं नरक में जाकर अनेक प्रकार के दुःखों को भोगने के बाद तिर्यंचगति में तीन सागरोपम तक भ्रमण किया। अंत में वह जीव महिपालनगरी में महिपाल नाम का राजा हुआ। पारसनाथ भगवान की माता ब्रह्मदत्ता महिपाल राजा की पुत्री थी, इसलिये पारसकुमार उनके दोहित्र (पुत्री के पुत्र) हुए। महिपाल राजा की रानी का मरण

हो जाने से वे दु:ख के कारण तपस्वी बन गये। सात सौ तपस्वी उनके शिष्य थे; अज्ञानपूर्वक कुतप करते हुए सात सौ तपस्वियों के साथ विहार करते-करते वह महिपाल तपस्वी बनारस नगरी में आकर वन में पंचाग्नि तप करता था... अग्नि में लकड़ी जलाता था।

— इतने में पारसकुमार भी मित्रों के साथ वनविहार करते हुए वहाँ पहुँच गये, उन्होंने महिपाल तपस्वी को देखा, तपस्वी को देखने के बाद भी पारसकुमार ने वंदन नहीं किया। अरे, सामान्य श्रावक भी कभी कुगुरु को नमस्कार नहीं करते, तब पारस-तीर्थंकर, कुगुरु को किसप्रकार वंदन करे ?

राजकुमार ने महिपाल तपस्वी को वंदन नहीं किया, इसलिये तपस्वी मन में क्रोधित हो गया... मानो पूर्व भव के क्रोधित संस्कार जागृत हो गये हों। अरे, मैं ऐसा महान तपस्वी-साधु! एवं राजकुमार का पूज्यनीय; फिर भी यह मुझे नमस्कार नहीं करता; इसको राज्य का अभिमान है; किंतु मैं भी तो उसके समान राज्य का त्याग करके तपस्वी बना हूँ; एवं मैं उसकी माता का पिता हूँ, फिर भी यह अभिमानी कुमार मेरी विनय नहीं करता। इसप्रकार वह अज्ञानी-गुरु मन ही मन क्रोध करने लगा।

शांत तथा गंभीर भगवान पार्श्वकुमार तो ऐसे के ऐसे ही शांति से खड़े थे; उनका मन अत्यंत दयालु था; किंतु झूठे कुगुरु-तपस्वी व्यर्थ ही क्रोधित हो गये, एवं कहने लगे कि मैं महान तपस्वी हूँ एवं पार्श्वकुमार की माता का पिता हूँ फिर भी यह अज्ञानी-अबोध पारसकुमार मुझे नमस्कार किये बिना अविवेकी होकर खड़ा है।

यह सुनकर पार्श्वकुमार का मित्र सुभोमकुमार कहने लगा कि हे महाराज! 'मैं गुरु हूँ, मैं महान तपस्वी हूँ' ऐसा समझकर आप अत्यंत अभिमान कर रहे हो; किंतु आपको खबर नहीं है कि मिथ्यात्वसहित के कुतप के कारण हिंसा से जीव यहाँ भी दु:खी होते हैं एवं परलोक में भी दु:खी होते हैं। काया एवं कषायों से भिन्न आत्मा का जहाँ तक अनुभव नहीं हो, वहाँ तक सच्चा तप नहीं होता है। तुम्हारे इस अज्ञानमय पंचाग्नि तप में छहकाय जीवों की हिंसा होती है; इसलिये यह कुतप है, अत: आत्मा का किंचित् भी हित होनेवाला नहीं है।

सुभोमकुमार की बात श्रवण करके महिपाल तपस्वी अधिक क्रोधित होकर कहने लगे—तू मुझे उपदेश देनेवाला कौन ? यह राजकुमार अभी छोटा बालक है; इसको मेरे तप का

कहाँ से ज्ञान होगा ? 'मैं तीर्थंकर हूँ' ऐसा समझकर यह बालक मेरे इस महान तप का अपमान कर रहा है। मेरे तप की महिमा का तुमको ज्ञान नहीं है, इसलिये तुम बकवाद क्यों कर रहे हो! पंचाग्नि के मध्य में बैठना, वायु के भक्षण द्वारा जीवित रहना, हाथ ऊँचे उठाकर एक पाँव के ऊपर दीर्घकाल तक खड़े रहना; कन्दमूल, वृक्षों के पत्ते खाकर जीवित रहना—इसप्रकार से कष्ट उठाकर तप करना कितना कठिन है ? ऐसी तपस्या से उच्च कोई धर्म नहीं है।

—ऐसा कहता हुआ अज्ञानी तपस्वी कुल्हाड़ी से लक्कड़ फाड़-फाड़कर अग्नि में डालने लगा। एक बड़ी लकड़ी काटकर अग्नि में डालनेवाला ही था...

—कि इतने में भगवान पारसनाथ ने हाथ ऊँचा उठाकर गंभीर स्वर से कहा—ठहरो... ठहरो... (अवधिज्ञान से उन्होंन जान लिया था कि इस लकड़े में दो सर्प बैठे हैं, एवं वह कुल्हाड़ी से कट गये हैं, अभी अग्नि में उनका होम हो जायेगा।) इसलिये दयालु, भगवान बोल उठे कि ठहरो... ठहरो... इस लकड़े को अग्नि में मत डालो।

अज्ञानी तपस्वी झल्लकार बोला—कि तू मुझे रोकनेवाला कौन ? (तपस्वी को यह पता नहीं था कि इस लकड़ी में दो नाग बैठे हैं।)

भगवान ने कहा:—तुम जिस लकड़े को काट रहे हो, उसमें दो सर्प बैठे हैं, एवं दोनों ही कट गये हैं तथा वह अग्नि में जल जावेंगे... इसलिये जीवहिंसा मत करो... मत करो।

अवधिज्ञानी पारसकुमार की इस बात को श्रवण करके तपस्वी को विश्वास नहीं हुआ; एवं वह कहने लगा कि—तू ऐसा कौन सा त्रिकालज्ञानी हो गया है कि तूने इस लकड़े में सर्प देख लिये ! तू तो व्यर्थ ही हमारे होम-हवन में विघ्न डाल रहा है।

तब सुभोमकुमार ने कहा:—महात्माजी ! यह भगवान पारसकुमार अवधिज्ञानी हैं, उनका वचन कभी असत्य नहीं होता। आपको सत्यता देखना हो तो लकड़ फाड़कर देख लें।

महिपाल तपस्वी (जो कि कमठ का ही जीव है) उसने क्रोध में आकर कुल्हाड़ी से लक्कड़ को फाड़ा, तो उसके अंदर से तड़फड़ाते हुए दो सर्प निकले; उनके शरीर के दो टुकड़े हो गये थे एवं दुःख से बेचारे कम्पायमान हो रहे थे, वह पारस प्रभु के सामने एकटक देख रहे थे;—मानो उनका मौन दुःख से मुक्त करने के लिये निवेदन कर रहा हो !

सर्प को देखकर सब लोग एकदम चकित हो गये; चारों तरफ हाहाकार होने लगा... महिपाल तपस्वी भी किंचित् समय के लिये आश्चर्य में पड़ गया।

प्रभु ने सर्प के ऊपर दृष्टि डाली; प्रभु की दृष्टि पड़ते ही दोनों सर्पों को अत्यंत शांति प्राप्त हुई। धीरे-गंभीर आवाज में प्रभु बोले—अरे! जीवों को कैसा अज्ञान है। जहाँ ऐसी जीवहिंसा होती हो, वहाँ कभी धर्म नहीं हो सकता।

तपस्वी अभिमान से कहने लगा—कि तू मुझे उपदेश देनेवाला कौन है ? मैं तो सात सौ तपस्वियों का गुरु हूँ।

अभी भी उसकी ऐसी अविवेकी बात को श्रवण करके, सुभोमकुमार कहने लगा—अरे महाराज! हम आपको न तो गुरु मानते हैं, एवं न ही आपका तिरस्कार करते हैं। परंतु आप्त सर्वज्ञ-वीतरागदेव तथा उनका कहा हुआ वीतराग-अहिंसारूप मार्ग, उसका त्याग करके अज्ञान से तुम मिथ्यात्व तथा क्रोधादि कषाय के वश होकर, यज्ञ के नाम पर छहकाय जीवों की हिंसा में प्रवर्तन कर रहे हो, एवं झूठे मार्ग द्वारा मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा रखते हो, यह तो केवल छिलकों को कूटकर चावल निकालने की इच्छा के समान अज्ञान है; जिसप्रकार पानी का मंथन करने से घी प्राप्त नहीं होता; इसीप्रकार अज्ञान क्रियाओं के द्वारा धर्म नहीं होता। कोई अंधा पुरुष अग्नि से बचने के लिये दौड़ा लेकिन वापस उसी अग्नि के कुंड में ही जा गिरा! इसीप्रकार अज्ञान से अंधे जीव हिंसादि कषाय द्वारा संसार के दावानल से बचना चाहते हैं; किंतु यह अज्ञानमय काय-क्लेश तो दुःख का ही कारण है। इसलिये हिंसामय अज्ञान-मार्ग का त्याग करके ज्ञानमार्ग को अंगीकार करना चाहिये। हमारा तुम्हारे ऊपर अतिस्नेह है। पूर्व में आप पारसकुमार के भाई थे, इसलिये आपको ऐसी हित की बात कही, इसलिये विचारपूर्वक अच्छी बात को ग्रहण करके मन के मलिन भावों का त्याग करो।

अहा, कैसा मधुर उपदेश! भावी तीर्थंकर की उपस्थिति में ऐसा सुंदर आनंदकारी वीतराग धर्म का उपदेश श्रवण करके भी वह कमठ का जीव सच्चे धर्म को अंगीकार नहीं कर सका। अरे, ऐसे साक्षात् भावी तीर्थंकर दृष्टि के समक्ष खड़े हैं, उनको देखकर भी इस कुगुरु का क्रोध शांत नहीं हुआ। जीव स्वयं भावशुद्ध नहीं करे तो तीर्थंकर भी उसका क्या करे ? फिर भी

अंदर ही अंदर उसको अवश्य चुभन हो गई कि इन उत्तम पुरुष के सामने मेरी कुछ भूल अवश्य हो रही है... किंतु क्रोध और अज्ञान के कारण उसने सच्चे वीतराग धर्म को स्वीकार नहीं किया। धर्म लाभ प्राप्त होने के लिये उसे अभी किंचित् विलंब था; अंत में वह भगवान के शरण में ही आकर सच्चा धर्म अंगीकार करता है।

एक ओर कटे हुए दो सर्प तड़प रहे हैं, एक ओर उन सर्पों की हिंस करनेवाले कुगुरु खड़े हैं, एक ओर इन सर्पों का उद्धार करनेवाले जगत्गुरु तीर्थंकर खड़े हैं, एवं मधुर वाणी द्वारा वीतरागधर्म का स्वरूप बतला रहे हैं। दोनों सर्प तो दया की मूर्ति भगवान को देखकर शांति को प्राप्त हुए एवं उनके मुख से वीतराग धर्म का उपदेश श्रवण करके धन्य बन गये।

अत्यंत गंभीरतापूर्वक पारसकुमार कहते हैं कि—हे सर्पराज! इस तपस्वी की अज्ञानता के कारण तुम्हारे शरीर के कुल्हाड़ी से कटकर दो टुकड़े हो गये हैं परंतु तुम क्रोध मत करना; पूर्वभव में क्रोध करने से तुमने इस सर्प का अवतार प्राप्त किया है; किंतु अब क्रोध का त्याग करके क्षमाभाव को धारण करना, पंचपरमेष्ठी भगवान का शरण लेना।—ऐसा कहकर पारसकुमार ने उन सर्पों को नमस्कार मंत्र सुनाया—दोनों सर्प शांति से श्रवण करते हैं।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।

अहा! भावी तीर्थंकर के दर्शन से, एवं उनके श्रीमुख से ऐसे नमस्कार मंत्र का श्रवण करने से नाग तथा नागिन दोनों अपना दुःख भूल गये... एवं शांतभाव धारण करते हुए अति उपकारबुद्धि से प्रभु के सामने देखते रहे... उन सर्पों के मुख में से मानों विष के बदले अमृत झर रहा हो कि अहा, हमारे जैसे विषधर जीवों को भी प्रभु ने करुणापूर्वक सच्चे धर्म को समझाकर हमारा कल्याण किया। धन्य है इन भगवान को! ऐसा विचार करके दोनों सर्पों ने भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाया। प्रभु की आँखों से तो अमृत की वर्षा हो रही थी।

नमस्कार मंत्र को सुनाने के बाद पारसकुमार ने कहा—अरे जीवो! अज्ञान से इस तिर्यंचगति में तुम अति दुःखी हुए हो, अब इससे मुक्त होने का अवसर है, इसलिये शांतभाव से तुम आत्मा का लक्ष में लेना। तुम्हारा आत्मा क्रोध से भिन्न चेतनभावरूप है, उसको लक्ष में लेकर परम अहिंसारूप वीतरागी जैनधर्म का शरण लेना।

अहा, प्रभु के शांतरस से झरनेवाले वचनों की क्या बात! उनका श्रवण करके नाग-नागिन दोनों जीवों को अति शांति प्राप्त हुई; एवं प्रभु के चरणों में ही देह त्याग करके भवनवासी देव में धरणेन्द्रदेव तथा पद्मावती देवी हुए। अवधिज्ञान से भगवान का उपकार जानकर वह भक्ति करने लगे कि धन्य जिनधर्म! धन्य पारसनाथ! कि जिन्होंने हमारे को सर्प में से देव बनाया, संसार से मुक्त करनेवाला जैनधर्म प्रदान किया।

देखो तो सही, क्षमाधारी आत्मा की समीपता में नाग जैसे विषैले जीव भी क्रोध नहीं करते हुए, क्षमाभाव से मरण करके देव हुए हैं।—धन्य है वीतराग मार्ग की क्षमा को!

ऐसे वीतराग धर्म को ग्रहण करके भी दुष्ट कमठ के जीव ने उसको स्वीकार नहीं किया, किंतु इन्होंने मेरा अपमान किया—ऐसा विपरीत समझकर क्रोध किया। सर्प तो धर्म को प्राप्त हुआ, किंतु महिपाल तपस्वी धर्म को प्राप्त नहीं कर सका; वह क्रोध के शल्यपूर्वक मरकर 'सवंर' नामक ज्योतिषीदेव हुआ। उसने कुतप किया था, इसकारण मरकर तुच्छ जाति का देव हुआ।

* * *

अब इस ओर पारसकुमार बनारसनगर में आत्मज्ञानसहित वैराग्यमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं... एवं सभी जीव उनके दर्शन से सुख प्राप्त करते हैं।

एक समय पौष कृष्णा ग्यारस के दिन पारसकुमार राज्यसभा में बैठे हैं, उनका जन्मोत्सव मनाया जा रहा है; देशदेशांतर के राजा-महाराजाओं की ओर से उत्तम वस्तुओं की भेंट दी जा रही है। अयोध्या का राजदूत भी भेंट लेकर आया है।

पार्श्वप्रभु के दर्शन से अयोध्या का राजदूत आश्चर्यचकित हो गया; विनयपूर्वक स्तुति करते हुए उसने कहा—हे प्रभो! हमारी अयोध्या नगरी के जयसेन महाराजा को आपके प्रति अति स्नेह है, इसलिये यह उत्तम रत्न तथा हाथी इत्यादि वस्तुएँ आपको भेंटस्वरूप भेजी हैं।

पारसकुमार ने प्रसन्न दृष्टि से दूत के सामने देखा एवं अयोध्या के वैभव की बात पूछी। तब दूत ने कहा—महाराज! हमारी अयोध्या नगरी तो तीर्थंकरों की खान है; तीर्थंकर जिस पुण्यभूमि में अवतरित हों, उस अयोध्या के वैभव की क्या बात! असंख्य वर्ष पहले भगवान

ऋषभदेव इस भरतक्षेत्र में प्रथम तीर्थंकर हुए, वह अयोध्या में ही अवतरित हुए थे, उस समय इन्द्र ने इस अयोध्या नगरी की रचना की थी।

अयोध्या के वैभव की बात भगवान प्रेम से श्रवण कर रहे हैं, दूत कहता है कि प्रभो! उसके बाद दूसरे अजितनाथ, अभिनंदन स्वामी, सुमतिनाथ तथा अनंतनाथ यह चार तीर्थंकर भी अयोध्या नगरी में ही अवतरित हुए थे। भरत चक्रवर्ती, भगवान रामचंद्रजी इत्यादि अनेक मोक्षगामी जीवों ने अयोध्या नगरी को पवित्र किया है।

अयोध्या नगरी का तथा पूर्व के तीर्थंकरों का वर्णन श्रवण करके भगवान पारसनाथ गंभीर विचार-मग्न हो गये; एवं उसी समय उनको मतिज्ञानावरण सातिशय क्षयोपशम हो गया; वृद्धिगत ज्ञानवैभव में अनेक भवों का साक्षात्कार हो गया, अर्थात् जातिस्मरण ज्ञान हुआ, उन्हें संसार से वैराग्य हो गया। अरे! पूर्व में देवलोक के वैभव को भी इस जीव ने अनेक बार भोगा किंतु उसे तृप्ति नहीं हुई; बाह्य पदार्थों के द्वारा जीव को कभी तृप्ति होनेवाली नहीं है। अहो! वह ऋषभादि तीर्थंकर धन्य हैं कि जिन्होंने संसार का त्याग करके मोक्षपद को प्राप्त कर लिया है। मुझे तीर्थंकर नामकर्म का बंध हुआ। इससे मुझे क्या लाभ हुआ ?—'किं जातः तीर्थकृत नाम बन्धनात्।' जगत के सामान्य मानव के समान संयम से रहित मेरे को समय व्यतीत करना उचित नहीं है। ऋषभादि जिनेश्वर जिस मार्ग से गये, उसी मार्ग पर मुझे जाना है, इसलिये अब आज ही मैं दीक्षा लेकर मुनि होऊँगा, और अपनी आत्म-साधना को पूर्ण करूँगा।

इसप्रकार भव से विमुख तथा मोक्ष के सन्मुख होनेवाले भगवान वैराग्य भावना का चिंतवन करने लगे।—संयोगरूप जीव के साथ सदा रहनेवाला वह शरीर भी अत्यंत भिन्न है, वहाँ अन्य की तो बात ही क्या? शरीर तो जीवन से रहित है—उसमें चेतना नहीं है; ज्ञान-दर्शनमय चेतना, वही मेरा जीवन है। सदा ज्ञान-दर्शनस्वरूप एक शाश्वत जीव हूँ; इसके अतिरिक्त अन्य कोई मेरा नहीं है; इसलिये सभी प्रकार के ममत्व का त्याग करके मैं मेरे चिदानंदस्वरूप में ही लीन होता हूँ। (वैराग्यजनक बारह भाना के लिये देखिये आत्मधर्म का अंक 326)। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप बोध बीज से रहित जीव संसार में भ्रमण करता है, इसलिये जीव को बोधि ही शरणरूप है—इसप्रकार वैरागी भगवान चारित्र लेने को उद्यत हो गये, उस समय चारित्रमोह की सेना भयभीत होती हुई भागने लगी। दीक्षा का महोत्सव करने

के लिये इन्द्र भी आ पहुँचे। लोकांतिकदेव जो कि एकावतारी हैं, वह भी आ गये एवं भगवान की वैराग्यभावना की प्रशंसा करने लगे।

दीक्षा के लिये उद्यत हुए भगवान, माता के समीप जाकर कहने लगे कि—हे माता! अब मैं चारित्र साधना के द्वारा केवलज्ञान प्रगट करने जाता हूँ।

यह सुनकर, प्रथम तो पुत्र-स्नेह के कारण माता की आँखों से अश्रु प्रवाहित होने लगे, किंतु माता जानती थी कि मेरा पुत्र तीर्थंकर है, इसलिये कहा कि—हे देव! मैं तुमको रोक नहीं सकती, तुम्हारा अवतार ही आत्मा की साधना को पूर्ण करने के लिये हुआ है; अतः तुम सुखपूर्वक आत्मा की साधना करके जगत का कल्याण करो। तुम्हारा मार्ग उत्तम है, मुझे भी इसी मार्ग पर आना है।

—इसीप्रकार पिता से भी आज्ञा प्राप्त करके भगवान पालकी में आरूढ़ हो गये.... वन में जाकर स्वयं दीक्षित होकर आत्मध्यान करने लगे। भगवान ने तीस वर्ष की आयु में अपने जन्म-दिवस के दिन ही दीक्षा ली; उनके साथ अन्य तीन सौ राजाओं ने दीक्षा ग्रहण की। अहा तीन सौ मुनिवरों से भरा हुआ वह दीक्षावन अद्भुत वीतरागता से शोभायमान हो रहा था; वन का वह शांत वीतरागी वातावरण मानों प्रभु की वीतरागता को ही प्रसिद्ध कर रहा हो। दिगंबर दशा के धारक इन मुनिराज को वस्त्र तो थे ही नहीं एवं अंदर मोह भी नहीं था, निर्विकल्प शुद्धोपयोगरूप सहजदशा से वे आत्मा में शोभायमान हो रहे थे। प्रभु को ध्यान में तुरंत ही सातवाँ गुणस्थान प्रगट हुआ तथा मनःपर्ययज्ञान भी प्रगट हो गया... अनंत गुण मानो एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हुए प्रगट होने लगे। मौन रहकर वह पारस मुनिराज आत्मा के निज कार्य की साधना करने लगे। सर्वप्रथम गुल्मखेट नगर के ब्रह्मदत्त (अथवा धनय) राजा ने मुनिराज को आहारदान दिया, वे भी वास्तव में धन्य हो गये।

देह तथा आत्मा की भिन्नता को पहिचाननेवाले, शत्रु-मित्र में समभाव धारण करनेवाले पारस मुनिराज अंतर में बारंबार शुद्धोपयोग के द्वारा निजस्वरूप का ध्यान करते हुए अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव करने लगे। उनके निकट सिंह तथा हिरण, सर्प तथा मयूर, इत्यादि जीव शांतिपूर्वक एकसाथ बैठकर एक-दूसरे के मित्र बन जाते थे; प्रभु को देखकर पशु भी प्रसन्न हो जाते थे।

ऐसी मुनिदशा में आत्मध्यानसहित विचरण करते हुए चार मास व्यतीत हो गये... भगवान की शुद्धि में वृद्धि होने लगी एवं केवलज्ञान की तैयारी होने लगी। एक बार वे मुनिराज सात दिन का ध्यानयोग धारण करके कायोत्सर्गसहित खड़े थे; वह दृश्य कोई अद्‌भुत ही था—वे स्वयं ही साक्षात् मोक्षमार्ग थे। काया की ममता का निवारण करके स्वरूप में समाविष्ट हो गये थे, एवं निर्ग्रंथ मार्ग के द्वारा भव का अंत कर रहे थे। जगत की बाह्य दृष्टि का त्याग करके निजस्वरूप के अवलोकन में वह मग्न हो गये थे। इतने में एक घटना हुई:—

आकाश में एक देव-विमान चला जा रहा था, किंतु जहाँ भगवान के ऊपर आया कि वह विमान एकाएक रुक गया।

(—किसका है यह विमान? इसके बाद क्या हुआ?—इसका वर्णन अगले अंक में पढ़िये।)

(आगामी अंक में भगवान पार्श्वनाथ का चरित्र पूर्ण हो जायेगा।)

आध्यात्मिक पद

(रचयिता - कविवर भागचंदजी)

जब आतम अनुभव आवै, तब और कछू न सुहावै।
रस नीरस हो जात ततक्षिण, अक्ष-विषय नहिं भावै ॥1॥
गोष्ठी कथा कतूहल विघटै, पुद्‌गल प्रीति नशावै ॥2॥
राग-द्वेष जुग चपल पक्षयुत, मनपक्षी मर जावै ॥3॥
ज्ञानानंद सुधारस उमगै, घट अंतर न समावै ॥4॥
'भागचंद' ऐसे अनुभवको, हाथ जोरि शिर नावै ॥5॥

आत्मा को समझने की जिज्ञासा

[भेदज्ञान द्वारा जीव महान होता है। हे जीव! तू ऐसा दृढ़ निश्चय कर तो अवश्य ही निर्विकल्प अनुभव होगा।]

पिछले दिनों गुरुदेव चार दिन के लिये भावनगर पधारे; टाऊनहॉल में समयसार गाथा 72 पर प्रवचन करते हुए कहा कि—ज्ञानस्वभावी आत्मा का चेतकस्वभाव है और रागादि भावों में चेतकपना नहीं है अर्थात् स्व–पर को जानने का स्वभाव नहीं है, वे दूसरे के द्वारा जाने जाते हैं।

'मैं राग हूँ' ऐसी राग की खबर नहीं, बल्कि उससे पृथक् ज्ञान ही उसे जानता है कि यह राग है, और मैं ज्ञान हूँ।

इसप्रकार ज्ञान और राग की भिन्नता है, एकता नहीं। जो जीव ऐसी भिन्नता का ज्ञान करता है, वह जीव ज्ञान में राग के अंश को नहीं मिलाता, इसलिये उसका ज्ञान रागादि आस्रवों से निवृत्त हुआ है, पृथक् हुआ है—जब ऐसा ज्ञान हो, तभी आत्मा मोक्षमार्ग में आता है।

शास्त्राभ्यास द्वारा कहीं आास्रव नहीं रुकते। ज्ञान अंतर्मुख होकर राग से भिन्न अपना अनुभव करे, तभी आस्रव छूटते हैं। आत्मज्ञान हो और राग में एकत्वबुद्धि रहे, ऐसा नहीं होता।

जिज्ञासु जीव को ऐसा लगता है कि यह रागादिभाव हमें दुःखदायक हैं और हमें उनसे छूटना है। इसलिये उनसे आत्मा कैसे पृथक् हो, ऐसा उसे प्रश्न उठा है। प्रश्न में उसने इतना तो स्वीकार किया है कि रागादिभावों में मेरा सुख नहीं और वह रागादिभाव मेरा स्वरूप नहीं; इसलिये उनसे छूटा जा सकता है—छूटने के लिये ही यह प्रश्न है।

ऐसा प्रश्न अंतर में किसी को ही उठता है। आत्मा की यह बात श्रवण करनेवाले भी कम ही होते हैं और उसे समझकर अनुभव करनेवाले तो कोई विशेष ही होते हैं। यह तो जिसे आत्मा का प्रेम हो, उसकी बात है; संसार में पैसा आदि जिसे प्रिय लगता है, राग और पुण्य प्रिय है, उसे यह आत्मा की बात कहाँ से अच्छी लगेगी? आत्मा तो इन सबसे रहित एक

ज्ञानानंदस्वरूप है। ऐसा आत्मस्वरूप समझने की सच्ची जिज्ञासा भी बहुत कम लोगों में जागृत होती है। साक्षात् अनुभव करनेवाला तो कोई विशेष ही होता है।

स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा अपने आत्मा का परमेश्वररूप अनुभव में लिया, तब रागादिभावों से उसकी अत्यंत भिन्नता हुई। आत्मानुभूति विकल्प से परे है। कर्ता-कर्म का भेद उसमें नहीं, ज्ञान में इन्द्रियों का अवलंबन नहीं; आत्मा स्वयंप्रत्यक्ष विज्ञानघन है; वह विकल्पों से रहित अनुभूति मात्र है;—ऐसे अपने स्वरूप का निर्णय करके जहाँ अंतर्मुख हुआ, वहाँ चैतन्य आत्मा अपने शांतरस में निमग्न होता है, विकल्पों के भँवर शांत हो जाते हैं और वह आस्रव से छूट जाता है। इसप्रकार ज्ञान का अनुभव ही दु:ख से छूटने का मार्ग है।

जीव को अरिहंत और सिद्धभगवान जैसा महान होना है। तो वह अपने को उनके ही समान महान (पूर्णस्वभाव से भरा हुआ) मानने पर होगा, या अपने को राग जैसा तुच्छ मानने से महान होगा? सिद्धभगवान के समान ही मेरा शुद्ध चिदानंदस्वरूप है। ऐसा अंतर्मुख निर्णय करके उस स्वरूप के अनुभव द्वारा आत्मा स्वयं केवलज्ञान प्रगट करके सिद्ध भगवान के समान महान होता है। परंतु मैं तो राग का कर्ता हूँ, मैं शरीर का कर्ता हूँ—ऐसा अनुभव करनेवाला जीव कभी भी महान नहीं हो सकता। भेदज्ञान द्वारा ही महान हुआ जाता है।

भाई! दूसरों के अवलंबन से तू सुखी होना मानता है, वह तो तेरी दीनता है। तेरी महानता तो इसमें है कि—मैं स्वयं सर्वज्ञता और पूर्ण आनंद से भरा हुआ भगवान हूँ। ज्ञान और सुख के लिये मुझे किसी का अवलंबन नहीं चाहिये।—इसप्रकार स्वसंवेदन से अपने आत्मा की श्रद्धा करना चाहिये। जिन सिद्धभगवान को तू नमस्कार करता है, उनके समान होने का सामर्थ्य तुझमें है। आत्मा स्वयं परमात्मा होता है। 'अप्पा सो परमप्पा' (सब जीव सिद्ध के समान हैं।)

अरे जीव! ऐसे स्वरूप को साधने के समय तू निश्चिंत होकर कहाँ मोहनिद्रा में पड़ा है? तू जाग रे जाग! तेरा चैतन्य-निधान लुटा जा रहा है, उसे सँभाल! आत्मभान बिना बाह्यक्रिया और राग के मोह में तू संसार में भ्रमण कर रहा है, उससे छूटने का अवसर अब तुझे मिला है, तो सत्समागम से आत्मस्वभाव का निर्णय कर। ऐसा दृढ़ निर्णय कर कि निर्विकल्पता होकर स्वसंवेदनप्रत्यक्ष अनुभव हो। ●●

आत्मा का एकत्व

❀ मुमुक्षु कहता है कि हे प्रभु! आपके एकत्व के मार्ग पर मैं अकेला चला आ रहा हूँ। आपकी ललकार सुनकर मोक्षमार्ग पर अकेला (एकत्व में परिणमन करते-करते) चला आ रहा हूँ। जगत के समक्ष देखने का मुझे प्रयोजन नहीं है। क्योंकि मुक्तिमार्ग तो 'एकत्वमार्ग' है, आत्मा के अतिरिक्त वह अन्य सबसे निरपेक्ष है।

❀ जो अपनी चेतना में परिणमन करे, वही आत्मा है। चेतना से बाह्य जो कुछ भी है, वह आत्मा नहीं। आत्मा अपनी चेतना से कभी बाह्य परिणमन नहीं करता।

❀ अहा, एकत्व भावना में तत्पर आत्मा को कभी बंधन नहीं होता, दु:ख नहीं होता, वह अपने एकत्व के आनंद में ही मग्न रहता है। हे जीव! तू संसार-क्लेश से थक गया हो तो अपने अंतर में अपने एकत्व को ढूँढ़।

❀ अज्ञानता से संसार के दु:खों को भोगने में तू अकेला था, मोक्ष का साधने में भी अकेला है और सिद्धदशा में भी सादि-अनंतकाल तक अकेले ही अपने निजानंद में लीन रहेगा।

❀ चेतनस्वरूप आत्मा वास्तव में 'एक' है, उसमें दूसरा कोई नहीं। इसलिये परभाव में अहंपना छोड़कर तू जाग और अपने एकत्वरूप शुद्ध आत्मा को देख।

❀ अरे, एकत्वस्वरूप आत्मा की अनुभूति में 'मैं ज्ञान हूँ' इतना विकल्प भी जहाँ नहीं चलता, वहाँ बाह्यलक्षी दूसरे राग की तो क्या बात? गुणभेद के एक सूक्ष्म विकल्प का भी ग्रहण रहे, वहाँ तक एकत्वस्वरूप शुद्धआत्मा श्रद्धा-ज्ञान और वेदन में नहीं आता। जो आत्मा के एकत्व से परिणमित हुआ, वह सब विकल्पों से भिन्न हुआ; उसने ज्ञान और विकल्प की भिन्नता को जाना और अनुभव किया।

❀ तत्त्ववेदी धर्मात्मा ऐसा अनुभव करता है कि सर्व विभाव रहित एक शुद्ध जीवास्तिकाय ही मेरा स्वतत्त्व है, अन्य कुछ भी मेरा नहीं; ऐसे एकत्व का अनुभव करनेवाला तत्त्ववेदी जीव अल्पकाल में अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होता है।●●

विविध समाचार

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)—पूज्य श्री कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रवचन में सवेरे श्री नियमसार के व्यवहारचारित्र अधिकार पर तथा दोपहर को श्री नाटक-समयसार के बंध द्वार पर प्रवचन हो रहे हैं। पिछले दिनों श्री अष्टाह्निका पर्व धामधूम से मनाया गया। जिनमंदिर में पूजन-भक्ति आदि के कार्यक्रम नियमितरूप से उत्साहपूर्वक चल रहे हैं। विशाल परमागम मंदिर का निर्माण-कार्य बराबर चल रहा है।

सोनगढ़ में प्रौढ़ जैन शिक्षण-शिविर

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी प्रौढ़ जैन शिक्षण-शिविर तारीख 27-7-71 से 15-8-71 अर्थात् श्रावण सुदी 5 से लेकर 20 दिन तक चलेगा। यह शिविर सिर्फ पुरुषों के लिये है। शिविर में लाभ लेने के इच्छुक भाई अपने आने की सूचना नाम व संपूर्ण पते सहित भिजवा देवें और समय पर सोनगढ़ आ जावें। अपना बिस्तर आदि आवश्यक सामान अवश्य साथ लेते आवें। आवास एवं भोजन की व्यवस्था संस्था की ओर से की जाती है।

शिक्षण-शिविर में आने से धार्मिक शिक्षण के उपरान्त परमोपकारी पूज्य श्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन श्रवण करने का परम सौभाग्य भी प्राप्त होगा। श्री जिनमंदिर, समवसरण मंदिर में विराजमान श्री जिनेन्द्र भगवान के दर्शन-पूजन-भक्ति का लाभ भी मिलेगा।

इस धार्मिक शिक्षण-शिविर की उत्तम कक्षा में श्री समयसारजी के कर्ता-कर्म अधिकार में से अमुक गाथायें तथा जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला चलेगी। मध्यम और जघन्य कक्षाओं में प्रति वर्ष की भाँति पाठयक्रम रहेगा।

प्रेषकः—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

अ.भा. जैन ज्योति नवयुवक संघ शाखा मौ (भिण्ड) द्वारा शिक्षण-शिविर का आयोजन

मौ (भिण्ड)—अ.भा. जैन ज्योति नवयुवक संघ शाखा मौ के तत्त्वावधान में दिनांक 15-6-71 से 26-6-71 तक लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका के शिक्षण शिविर का आयोजन श्री शांतिकुमार जैन, बी.ए., साहित्यरत्न (अध्यापक) मौ द्वारा संचालित किया गया। जिसमें लगभग 40-50 नवयुवकों ने भाग लेकर जैन शिक्षण प्राप्त किया है। दिनांक 26-6-71 को परीक्षा ली गई। परीक्ष में सबसे अधिक अंक प्राप्त करनेवालों को पुरस्कार दिये गये। वीतराग विज्ञान पाठशालाओं में नियमित शिक्षण प्राप्त करने के लिये नवयुवकों में उत्साह एवं जिज्ञासा उत्पन्न की जा रही है। यह शिक्षण वर्ग नवयुवकों के लिये विशेष लाभकारी और प्रेरणाप्रद सिद्ध हुआ।

महामंत्री - दिनेश जैन
अ.भा. ज्योति नवयुवक संघ मौ (भिण्ड) म.प्र.

❀ ❀ ❀

श्री ब्र. हेमराजजी द्वारा इटावा (उ.प्र.) में शिक्षण-शिविर एवं अपूर्व धर्मप्रभावना

यहाँ पर श्री ब्रह्मचारी हेमराजजी गत आठ माह से प्रवास कर रहे हैं, उनके इस प्रवास-काल में छहढाला, द्रव्यसंग्रह, जैनसिद्धांत प्रवेशिका तथा तत्त्वार्थसूत्र आदि का शिक्षण-कार्यक्रम सुचारुरूप से चलता रहा है। लोगों में नवीन जागृति पैदा हुई है, महिलाओं ने भी लाभ उठाया है।

दिनांक 25 जून 71 को परीक्षा ली गई, जिसमें 51 पुरुषों एवं महिलाओं ने भाग लिया। जिसमें सभी परीक्षार्थी अच्छे नम्बर से पास हुए। श्रीमती धनवन्तीदेवी ने परीक्षार्थियों को समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, छहढाला, प्रश्नोत्तरमाला आदि पुस्तकें श्री ब्रह्मचारी हेमराजजी के द्वारा वितरित कराईं। साथ ही मिष्टान्न वितरण किया गया।

आज ब्रह्मचारी हेमराजजी भोगाँव (जिला-मैनपुरी) वालों के विशेष आग्रह से शिक्षण कार्यक्रम चलाने हेतु रवाना हो गये हैं।

महाराजजी का विदाई समारोह भावभीनी नम्रांजलि पूर्वक हुआ। साथ ही महाराजजी से अनुरोध किया गया कि महाराजजी ने जो धर्मवृक्ष लगाया है, उसे अपनी अमृतमय वाणी से सींचते रहें, ताकि वह हराभरा बना रहे। और हम मुमुक्षु मंडल के सदस्य योग्य बनकर सद्धर्म का प्रचार करने में सहयोगी बन सकें, व आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकें।

यहाँ की जैनसमाज पूज्य स्वामीजी के प्रति आभार प्रदर्शित करती है कि आज उनके निमित्त से जैनधर्म की शिक्षा नवीन प्रभावात्मक शैली द्वारा प्राप्त होने लगी है। बच्चों में नवीन जागृति एवं धार्मिक संस्कार पैदा हुए हैं।

नि:स्वार्थी एवं उपकारी श्री पंडित ज्ञानचंदजी-मंत्री मुमुक्षु मंडल मध्यप्रदेश के प्रति यहाँ की जैन समाज आभारी है कि उन्होंने जयपुर से लौटते समय अपना अमूल्य समय देकर इटावा जैन समाज को लाभ देने की कृपा की।

मंत्री, चन्द्रप्रकाश जैन
श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, इटावा

❀ ❀ ❀

मध्यप्रदेशीय दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल के समाचार

मध्यप्रदेश मुमुक्षु मंडल के तत्त्वावधान में माह मई 71 में काफी प्रचार हुआ है, जिसमें से कुछ विशेष समाचार मुमुक्षुओं की प्रेरणा हेतु दे रहे हैं—

विदिशा:—पूज्य ब्रह्मचारी भँवरलालजी द्वारा डेढ़ माह से विदिशा समाज को प्रवचनों का अपूर्व लाभ प्राप्त हो रहा है।

अशोकनगर:—श्री पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा द्वारा 3 दिन प्रवचन व शिक्षण का कार्यक्रम होने से समाज में तत्त्व-जिज्ञासा जागृत हुई है।

जयपुर:—जयपुर में प्रशिक्षण-शिविर में पधारे हुए अनेक विद्वान व मध्यप्रदेश के

करीब 55 स्थानों के प्रतिनिधियों के बीच दिनांक 2-6-71 को टोडरमल स्मारक भवन में एक मध्यप्रदेशीय मुमुक्षु मंडल की बैठक श्रीयुत पंडित बाबुभाई चुन्नीलाल महेता फतेपुर की अध्यक्षता में रखी गई, जिसमें विशेष श्री पंडित फूलचंदजी सि. शास्त्री बनारस, श्री सेठ भगवानदासजी अध्यक्ष, श्री नेमीचंदजी पाटनी, श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री, श्री सेठ जवाहरलालजी उपाध्यक्ष, श्री डालचंदजी मंत्री, श्री ज्ञानचंद जैन प्रचार-मंत्री आदि अनेक प्रतिनिधियों के द्वारा विचार रखने के बाद यह प्रस्ताव किया गया कि स्थानीय सभी मुमुक्षु मंडल अपने यहाँ के विभिन्न स्थानों में सत्-प्रचार को बढ़ावें और अपने यहाँ के विद्वान जो अधिक से अधिक समय दें उसकी सूचना प्रचार-कार्यालय विदिशा को देवें। श्री सेठ डालचंदजी मंत्री तथा श्री सेठ जवाहरलालजी विदिशा ने एक-एक माह प्रचार हेतु अपना समय निश्चित किया, जिससे सभी को प्रेरणा प्राप्त हुई।

प्रचार में वृद्धि हेतु स्थानीय मुमुक्षु मंडल अपने-अपने विचार शीघ्र भेजें।

इटावा (उ.प्र.)—जयपुर से लौटते समय दिनांक 5 से 13-6-71 तक धार्मिक शिक्षण के रूप में पूज्य ब्रह्मचारी हेमराजी ने तथा पंडित ज्ञानचंदजी जैन विदिशावालों ने सैकड़ों बालकों तथा मुमुक्षुओं को आत्मलाभ देकर समाज में विशेष जागृति पैदा की।

कोलारस (म.प्र.)—दिनांक 22 से 25-6-71 तक पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावालों के द्वारा चार टाइम शिक्षण व प्रवचन के द्वारा समाज में तत्त्वज्ञान के प्रति रुचि उत्पन्न हुई है।

अशोकनगर (म.प्र.) में जैन शिक्षण-शिविर

इस युग के महान आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के सदुपदेश से प्रेरित होकर दिगम्बर जैन-समाज अशोकनगर के संरक्षण में श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा अशोकनगर में दिनांक 26-6-71 से दिनांक 10-7-71 तक श्री दिगम्बर जैन शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया।

इसमें प्रमुख अध्यात्म-प्रवक्ता श्री बाबूभाई चुनीलाल मेहता (फतेहपुर), पंडित श्री हुकमचंदजी शास्त्री (जयपुर), पंडित श्री चिमनभाई (सोनगढ़), पंडित श्री नेमीचंदभाई (रखियाल), पंडित श्री धन्नालालजी (लश्कर), पंडित श्री ज्ञानचंदजी (विदिशा) आदि विद्वानों ने पधारकर शिक्षण-शिविर को सफल बनाया। अच्छी प्रभावना हुई। शिविर का

उद्घाटन समाज के सुप्रतिष्ठित व्यक्ति श्री चौधरी मोतीलालजी द्वारा हजारों मुमुक्षुओं की उपस्थिति में हुआ।

ज्ञानचंद जैन, प्रचारमंत्री

म.प्र. मुमुक्षु मंडल प्रचार केन्द्र, विदिशा (म.प्र.)

❀ ❀ ❀

जलगाँव (महाराष्ट्र) में जैनधर्म शिक्षण-शिविर

तारीख 13-7-71 से 22-7-71 तक जलगाँव में जैन शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया है। प्रौढ़ शिक्षण, बाल शिक्षण के उपरान्त धार्मिक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम भी होंगे। सभी प्रान्तों से साधर्मीगण आ रहे हैं, ठहरने एवं भोजनादि का प्रबंध मुमुक्षु मंडल द्वारा किया गया है। शिविर का उद्घाटन श्री नवनीतलाल जवेरी के शुभहस्त से होगा।

पता —श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल

द्वारा आनंदीलाल केशवलाल शाह,

केशव मेंशन, 131 भवानी पेंठ, जलगाँव (महाराष्ट्र)

❀ ❀ ❀

सनावद (म.प्र.) में अष्टाह्निकापर्व में सिद्धचक्रविधान एवं धर्मप्रभावना

अषाढ़ शुक्ला अष्टमी तारीख 1-7-71 से प्रारंभ होकर अषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा तारीख 8-7-71 तक सनावद में सिद्धचक्र मंडल विधान का आयोजन श्रीमान् सेठ सोनचरण चुन्नीलालसाजी की ओर से किया गया था; जिसमें श्रीमान् पंडित धन्नालालजी ग्वालियर विशेष अतिथि के रूप में पधारे थे। जिनमंदिर में प्रतिदिन सिद्धचक्र पूजा विधान के अतिरिक्त पंडित धन्नालालजी द्वारा सुबह 5 से 6 बजे तक क्लास, 7 से 8 बजे तक पूजा-जाप, 8 से 9 तक छहढाला पर प्रवचन, 9 से 10 तक चर्चा तथा दोपहर 1 बजे से पूजन, पूजन के पश्चात् जयमाला का अर्थ; रात्रि को 7 से 8 तक भक्ति, 8 से 9 तक मोक्षमार्गप्रकाशक पर प्रवचन, पश्चात् 9 से 10 चर्चा होती थी। पंडितजी के पधारने से सनावद में अच्छी धार्मिक जागृति आई; पंडितजी के सारगर्भित आध्यात्मिक प्रवचनों से लोग अत्यंत प्रभावित हुए।

अंतिम दिन तारीख 8-7-71 को जिनेन्द्र भगवान की भव्य रथयात्रा निकाली गई।

—ईश्वरचंद जैन
अध्यक्ष, दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल

आत्मधर्म के ग्राहकों से

आपका प्रिय मासिक-पत्र आत्मधर्म प्रति मास की 15 वीं तारीख को रवाना किया जाता है। यदि आपको समय पर न मिले अथवा अन्य कोई शिकायत हो तो कृपया निम्न पते पर सूचित करें।

मैनेजर,
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नये प्रकाशन

'ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव' (तीसरी आवृत्ति)

धर्म-जिज्ञासुओं के लिये यह महान उपकारी जैनधर्म का महत्वपूर्ण तात्त्विक और प्रयोजनभूत ग्रंथ है, जिज्ञासुओं के लिये सर्व समाधानरूप अपूर्व वस्तुस्वभाव के ज्ञानमय तत्त्वदृष्टि प्रगट करनेवाली महान वस्तु है। इसके कुछ मुख्य विषय—

1- सर्वज्ञता के निर्णय सहित क्रमबद्धपर्याय के स्वरूप का विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण तथा उसमें दोष कल्पना का निराकरण।

2- सम्यक् अनेकांतगर्भित सम्यक् नियतवाद-जिसमें पुरुषार्थ, स्वभाव, काल, नियति और कर्म ये पाँच समवाय और क्रमबद्ध के निर्णय में स्वसन्मुख होने का सच्चा पुरुषार्थ तथा अनेकांत।

3- सम्यक् अनेकांत, निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार।

4- द्रव्य-पर्याय संबंधी अनेकांत। 5- अनंत पुरुषार्थ। आदि

बढ़िया जिल्द; सुंदर कागज व आकर्षक बढ़िया टाईप में उत्तम छपाई।

पृष्ठ संख्या 384, मूल्य 3.00

लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका— (आठवीं आवृत्ति) जिज्ञासुओं की अधिक माँग होने से प्राय: प्रतिवर्ष छपायी जाती है। यह पुस्तिका प्रत्येक धर्म-जिज्ञासु के पास होना आवश्यक है।

पृष्ठ संख्या (छोटी साइज में) 102, मूल्य : 25 पैसे

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री अष्टपाहुड़ : (कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित ग्रंथ पर पण्डितेन्द्र स्व. श्री जयचंदजी छाबड़ा की ढूंढ़ारी भाषा-वचनिका का अक्षरश: अनुवाद) करीब 25 वर्ष से अप्राप्त था। मुमुक्षुओं की माँग होने से 2500 प्रतियाँ श्री सेठी ग्रंथमाला, बम्बई द्वारा प्रकाशित कराई गई थीं जो छपते ही बिक गईं। 350 प्रतियाँ बड़े आर्डरों में से कम करके बचायी गई हैं। जिन भाईयों को आवश्यकता हो मँगवा लेवें।

पृष्ठ संख्या (बड़ी साइज में) 380, मूल्य : 4.50

मिलने का पता—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-4, बापूनगर, जयपुर-4 (राज.)

वैराग्य-पद

(राग-धमाल गौडी)

कहा परदेशी को पतियारो ।।टेक ।।

मन मानै तब चलै पंथ को, सांज गिनै न सकारो,
सबै कुटुम्ब छांड़ इतही पुनि, त्याग चलै तन प्यारो ।।कहा० ।।
दूर दिसावर चलत आपही, कोऊ न राखनहारो,
कोऊ प्रीति करो किन कोटिक, अंत होयगो न्यारो ।।कहा० ।।
धनसों राचि धरम कों भूलत, झूलत मोह मँझारो,
इहि विधि काल अनंत गमायो, पायो नहिं भवपारो ।।कहा० ।।
सांचे सुखसों विमुख होत है, भ्रम मदिरा मतवारो,
चेतहु चेत सुनहु रे 'भइया', आप ही आप संभारो ।।कहा० ।।

आत्मा का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

1	समयसार	(प्रेस में)
2	प्रवचनसार	4.00
3	समयसार कलश–टीका	2.75
4	पंचास्तिकाय–संग्रह	3.50
5	नियमसार	4.00
6	समयसार प्रवचन (भाग–1)	4.50
7	समयसार प्रवचन (भाग–४)	4.00
8	मुक्ति का मार्ग	0.50
9	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग–1	0.75
	″ ″ ″ भाग–3	0.50
10	चिद्‌विलास	1.50
11	जैन बालपोथी	0.25
12	समयसार पद्यानुवाद	0.25
13	द्रव्यसंग्रह	0.85
14	छहढाला (सचित्र)	1.00
15	अध्यात्म–संदेश	1.50
16	नियमसार (हरिगीत)	0.25
17	श्रावक धर्म प्रकाश	2.00
18	अष्ट–प्रवचन (भाग–1)	1.50
19	अष्ट–प्रवचन (भाग–२)	1.50
20	मोक्षमार्गप्रकाशक	2.50
21	पं. टोडरमलजी स्मारिका विशेषांक	1.00
22	बालबोध पाठमाला, भाग–1	0.40
23	बालबोध पाठमाला, भाग–2	0.50
24	बालबोध पाठमाला, भाग–३	0.55
25	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग–1	0.55
26	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग–2	0.65
27	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग–3	0.65
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	3.30
28	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	0.25
29	वीतरागविज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	2.25
30	खानिया तत्त्वचर्चा (भाग–1)	8.00
	″ ″ (भाग–2)	8.00
31	मंगल तीर्थयात्रा (सचित्र गुज०)	6.00
32	मोक्षमार्गप्रकाशक सातवाँ अध्याय	0.50
33	जैन बालपोथी भाग–2	0.40
34	अष्टपाहुड़ (कुन्दकुन्दाचार्यकृत)	
	पं. जयचंदजीकृत भाषावचनिका	4.50
35	ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव	3.00
36	दशलक्षण धर्म	0.75
37	शब्द–कोष	0.20
38	हितपद संग्रह (भाग–2)	0.75

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)